ग़रीब

[देश-दशा-प्रदर्शक करुण-रस-प्रधान क्रान्तिकारी नाटक]

लेखक

[श्री 'भगवत्' जैन]

ग़रीब

[देश-दशा-प्रदर्शक, करुण-रस-पूर्ण सामाजिक नाटक]

लेखक

श्री 'भगवत्' जैन

प्रकाशक

श्री भगवत्-भवन, ऐत्मादपुर (आगरा)।

: मूल्य :

बारह आना।

❁ पात्र-पात्री ❁

[परिचय]

त्रिलोचन	...	...	एक ग़रीब आदमी
बच्चा	...	...	त्रिलोचन का बच्चा
लक्ष्मीकान्त	...	...	एक अहंकारी सेठ
नारायण	...	...	लक्ष्मीकान्त का पुत्र
तीन सज्जन	...	...	चन्दा-चटोर सज्जन
चार व्यक्ति	...	...	कन्याओं के पिता
बाबू	...	...	योरोपियन-ड्रेसधारी
सेठ	...	...	कोठी वाले सेठ

बृद्ध नौकर, डाक्टर, चपरासी, अमीन, ग़रीब आदमी, औरतें बालक-बालिकाएँ और मुनीम !

—: पात्री :—

लक्ष्मी	...	...	त्रिलोचन की पुत्री

सखी मण्डल, वेश्या, औरत और सुन्दरी।

मुद्रक—कपूरचन्द जैन, महावीर प्रेस, किनारी-बाज़ार, आगरा।

अपनी क़लम से—

यह चौथा नाटक है। पिछले नाटकों की तरह इसमें भी मंच पर उतारने वालों की सुविधा का ख़याल रखा गया है। भाषा भी वही आम फ़हम स्तेमाल की गई है। और समय की क़ीमत के लिहाज से जो कुछ चाहा, थोड़े में कहने का प्रयत्न किया है। लम्बे ड्रामे न केवल पात्रों के लिए दुरूह बनते हैं, वरन् दर्शकों के भीतर भी अरुचि का बीज बोते देखे गये हैं।

कथा-वस्तु नितान्त मौलिक है। किसी घटना विशेष को लक्ष्य लेकर एक पंक्ति भी नहीं लिखी गई। इतने पर भी, यदि कोई अपने ऊपर आक्षेप समझे, तो यह उसकी नैतिक कमज़ोरी समझना चाहिए, लेखक को दोषी नहीं।

आज की दुनिया जिन संकटों से गुज़र रही है, उनके प्रतीकार के लिए उपाय होने से पेश्तर यह ज़रूरी है, कि वे बातें जनता के सामने लाई जाँय, हालाँकि जनता स्वयं उन्हें भोग रही और परेशान हो रही है।

अगर हम पैसेवाले यह चाहते हैं कि हम सुखी रहें, तो यह लाज़िमी होना चाहिए कि वे ग़रीबों, दीन-दुखियों के दुःखों का

भी स्मरण रखें, यथा-साध्य सहायता करते रहना अपना कर्तव्य समझें, उन्हें भी मनुष्य समझने की उदारता अपने में पैदा करें।

इस पुस्तक में यही दिखलाने की चेष्टा की गई है। कहाँ तक कामयाबी मिली है, यह लेखक के क्षेत्र से बाहर की चीज़ है। पिछले नाटकों की तरह अगर इसे भी आपका स्नेह प्राप्त हुआ, तो यह सफलता ही समझनी चाहिए।

श्रावण कृष्ण पक्ष
सप्तमी सं० २००१
१२ जुलाई ४४

आपका बन्धु
'भगवत्'

गरीब

[देश-दशा-दर्शक-क्रान्तिकारी नाटक]

पहला–अङ्क

पहला दृश्य

[स्थान—रंगभूमि, सखी-मंडल का सामूहिक-गायन ।]

गाना

सुनलो दीनानाथ दयाकर,
हम दुखियों की टेर !
सिर पर छाए बादल-काले !
सहते दिन-दिन कठिन कसाले !!
किसे सुनाएँ कष्ट-कहानी ?
फैल रहा अन्धेर !!
कृपासिन्धु ! अब आओ, आओ !
दया, दयालू दिखला जाओ !!
'भगवत्' हाहाकार मिटादो,
अब न लगाओ देर !!

पटाक्षेप (प्रस्थान)

दूसरा दृश्य

[स्थान—त्रिलोचन का मकान। छोटा सा दालान है, जिसमें एक ओर एक टूटी-सी खटिया पड़ी है, जिस पर एक छै-सात साल का बीमार बच्चा लेटा हुआ है, फटा और मैला चादरा ओढ़े हुए है। पाटी का सहारा लिये त्रिलोचन की पुत्री—लक्ष्मी—उम्र चौदह पन्द्रह साल, मलिन साड़ी बाँधे शोक-शील मुद्रा में बैठी है। खटिया के क़रीब एक पट्टे पर मिट्टी का घड़ा, एक पीतल का लोटा और एक सकोरा रखा है। लक्ष्मी बीमार भैया को रह रह कर सकोरे से पानी पिलाती है। पंखा झलती है। त्रिलोचन जो पहिले से सिर झुकाए चारपाई के समीप बैठा है, अब उठ कर आता है।]

त्रिलोचन—(कातर कण्ठ से, खड़े होकर) ग़रीब! जिनकी दुनियां मे वैभव का चकाचौंध नहीं। जो हमेशा अन्धेरे में रहते हैं। उजाले की ओर देखने वाली दुनिया वालों की नजर उन्हें नहीं देख पाती।

वे जीते हैं अँधेरे में, अँधेरे में फ़ना होते।
अँधेरे से नहीं हैं मरते-दम तक जो रिहा होते॥
मगर यह सच है, दुनिया ने क़द्र उनकी नहीं समझी—
उजाला गर उन्हें मिलता तो जाने क्या से क्या होते?

आज मुट्ठी-भर दानों के लिए, न जाने कितने अभागे मौत से जूझ रहे हैं! कितने सुकुमार बच्चे भूख-भूख चिल्लाते हुए अकाल ही काल के गाल में चले जा रहे हैं! कौन उन्हें देख रहा है! किसके पास रहम की निगाह है, उनके लिए!

बिलखते भूख से बच्चे को, माँ का मन निरखता है।
पिता भी पेट जो—भर दे, न इतनी शक्ति रखता है॥
दयामय! अब दया की ओर अपनी मोड़ दो आँखें।
या ऐसे दृश्य के पहिले पिता की फोड़ दो आँखें॥

बच्चा—(क्षीण-स्वर में) पानी... ! पानी दो...पानी !

[लक्ष्मी पानी पिलाती है। खाली सकोरे को रख कर आँसू पोंछती है।]

लक्ष्मी—(रुधन के स्वर में) भैया की दशा अच्छी नहीं है पिताजी !

त्रिलो०—(बच्चे की ओर देख कर) तू किसकी दशा अच्छी समझ रही है—लक्ष्मी ! सब के भीतर भूख की ज्वाला सुलग रही है, हम सबको एक दिन उसी में भस्म होना है। चार दिन हुए—तेरी माँ तुझसे जुदा हो गई, और आज तेरा भैया भी तेरे सामने से उठा जा रहा है।—ओफ् ! (आँखें पोंछते हुए) क्षमा···! क्षमा कर मेरे लाल ! तेरा ग़रीब बदनसीब बाप इस लायक नहीं है कि दो कौर रोटी तेरे मुँह में डाल कर, तुझे मरने से रोक सके। तू भूख से अशक्त हो रहा है। तेरी बीमारी की दवा अस्पतालों की शीशियों में नहीं, पूँजीपतियों के कोठारों में भरी है। जहाँ तक ग़रीबों की आवाज़ नहीं पहुँच सकती।

लक्ष्मी—(अधीर होकर) पिताजी ! पिताजी, साहस न छोड़िये। एक मुट्ठी अन्न—सिर्फ़ एक मुट्ठी अन्न पर भैया की जान टिकी हुई है। बचाइए—बचाइए उसे।

त्रिलो०(गंभीर होकर) कल-कारखानों ने कला-कौशल्य नष्ट कर दिया है—! अब मनुष्य की वह क़दर नहीं है—बेटी ! एक मुट्ठी अन्न का अर्थ है—एक मनुष्य की ज़िन्दगी ? और ज़िन्दगी, सहज ही न मिलने वाली चीज़ है।

पड़े हैं मौत के हम इसलिए ही आज चक्कर में।
अभागे पेट को है एक दाना भी नहीं घर में॥

बच्चा—(कराहते हुए) पानी···

[लक्ष्मी सकोरे को लेकर लोटे के पास जाकर पानी उँडेलती है। एक बूँद भी पानी नहीं निकलता। फिर सकोरा रख कर लोटे

को घड़े से भरना चाहती है। पर, उसमें भी पानी नहीं है। हताश हो देखती है। त्रिलोचन लोटे को, फिर घड़े को उठा कर देखता है]

त्रिलो०—(गंभीर स्वर में) फूटी तक़दीर की तरह, फूटा बर्त्तन भी काम में नहीं आता। पानी पर जीने वाले मेरे लाल के लिए पानी भी नहीं रहा। घबराओ नहीं लक्ष्मी! मैं पानी अभी लाता हूँ। इस प्रकृति के दान पर अभी पूँजीपतियों का अधिकार नहीं हुआ, लेकिन याद रक्खो—एक दिन आ सकता है, जब पानी भी मोल मिलने लगे !

मुश्किल क्या कोई भी करना वाणिज्य और व्यापार उसे ?
पैसा है जिसकी मुट्ठी में, दुनिया के सब अधिकार उसे।

(त्रिलोचन पानी को जाता है)

ल०—(दुलार से बच्चे की ठोड़ी छूते हुए) मेरे ग़रीब, ना-समझ भैया ! तू कितना दुर्बल, कितना अशक्त हो रहा है कि देख कर आँखों से आँसू गिरने लगते हैं। भूख ने तन्दुरुस्ती सोखकर, वह आग प्रज्वलित करदी है कि ख़तरा दीखने लगा है।

बच्चा—(क्षीण-स्वर में) पा···नी··· !

ल०—पानी ? अभी लो पानी, मेरे भैया ! कल तक तू रोटी, रोटी, भूख, भूख चिल्लाता था। आज सिर्फ़ पानी—पानी ही माँग रहा है ? अब भूख नहीं रही तुझे ? (आँसू पोंछते हुए) माँ ने भी अन्त में पेट की ज्वाला को पानी से ही बुझाया था।

त्रिलोचन—(पानी लेकर आता है। देते हुए) लो, बुझाओ बेटी ! अन्न से बुझने वाली आग को पानी से बुझाओ।

हटा दो मौत को जो लड़ रही है जिन्दगानी से।
न भड़के और, इतना देखना तुम, आग पानी से॥

ल०—(दीन होकर) पिताजी ! पिताजी !! ये अमंगल-शब्द मुँह पर न लाइये ! दुखों ने तुम्हारे हृदय को पत्थर बना दिया है—विद्रोही बना दिया है, उसके भीतर से ममता खींचली

है। नहीं, एक पिता अपने दुलारे के लिये एक मुट्ठी अन्न नहीं ला सकता ? ज़रा पिता की आँखों से देखिए कि बच्चा कैसा तड़प रहा है ?

उधर कट रही शान से जिन्दगानी,
बदस्तूर सब कार्यक्रम चल रहा है।
इधर दीन दुनिया का मासूम बच्चा,
फ़क़त जिन्दगी को मचल रहा है॥

त्रिलो० (सिर थामकर बैठ जाता है) जिन्दगी···? एक मुट्ठी अन्न ? एक ग़रीब की जिन्दगी का सवाल है लक्ष्मी ! और धनवालों की दुनिया में ग़रीब को जीने का हक़ नहीं है। (उठकर बच्चे का मुँह देखते हुए) किस राक्षस की भूख तुझे अपना ग्रास बना रही है—बेटा ?

बच्चा—(हाथ उठाता है गोद में आने के लिए) पिता···जी !

त्रिलो० (दूर हटकर) नहीं, नहीं मैं पिता कहलाने योग्य नहीं। मुझ से दूर रहो बेटा ! (आँसू पोंछते हुए) ओफ़ ! कैसी करारी चोट है ? अब नहीं सहा जाता भगवान !

अब स्वयं अपनी दया से काम लो।
डूबती इन किश्तियों को थाम लो॥

बहुत चाहा कि न रोया जाय, लेकिन भीतर से हृदय फटा जा रहा है—दीन बन्धु ! मौत के झूले पर झूलते हुए बच्चे की करुण आँखें—उन्मत्त बनाए दे रही हैं। अपने पेट के लिए नहीं, नादान बच्चे की जिन्दगी के लिए अब भीख माँगनी पड़ेगी, चोरी करनी पड़ेगी—सब कुछ करना पड़ेगा।

उठा लूँगा मैं दुनिया की जलालत और नाराज़ी।
लगा दूँगा कि मैं दो रोटियों पर जान की बाज़ी॥

लक्ष्मी—(शान्ति से) आवेश में न आइए पिता जी ! दीनता-पूर्वक किसी दयावान से दो मुट्ठी अन्न माँग लाइए।

त्रिलो०—(तेज़ी से) दयावान् ? कौन दयावान है ? दया तो ग़रीबों के हृदय में है, और उन बिचारों की मुट्ठियाँ ही नहीं पेट तक खाली हैं।

दया की रोज़ ही रँग रेलियाँ आँखों निरखते हैं।
जो दे सकते हैं दीनों को, वो दिल पत्थर का रखते हैं॥

लक्ष्मी—(गम्भीर होकर) परन्तु पिताजी ! पत्थर भी घिस जाता है, पिस जाता है और पानी की तरह पतला हो जाता है। क्या दानवीर सेठ लक्ष्मीकान्त हमारी मदद नहीं कर सकते ? भीख में नहीं तो कर्ज़ में कुछ दे सकते हैं ?

मिटा सकते हैं वे चाहें तो सारी परेशानी को।
है क्या मुश्किल उन्हीं जैसे किसी भी एक दानी को ?

त्रिलो०—(संयत स्वर में) लक्ष्मी ! तुमने पैसे की चमक नहीं देखी। दया की आँखें पैसे के चकाचौंध में खुली नहीं रहतीं। नर, नर-पिशाच बन जाता है। बदनसीब के रोने की आवाज़ उसके दिल को नहीं छूती।

बच्चा—पा···नी···! (लक्ष्मी पानी पिलाती है)

त्रिलो० (बच्चे की ओर देखते हुए) घबराओ नहीं, मेरे लाल ! और कुछ देर पानी पर सब्र करो। मैं अभी तेरे लिए खाने का बन्दोबस्त करता हूँ। जिस तरह भी होगा, खाना लेकर आऊँगा।

पटाक्षेप (जाता है)

तीसरा दृश्य

[स्थान—सेठ लक्ष्मीकान्त की कोठी। सामने तख्त पड़ा है—उस पर सफ़ेद चादरा बिछा है, मसनद लगे हैं। इधर-उधर कुर्सियाँ पड़ी हैं। मसनद के सहारे सेठ लक्ष्मीकान्त बैठे हैं, बराबर में नारायण बैठा है सेठजी का एक मात्र पुत्र। उम्र २४-२५

साल। आँखों पर चश्मा चढ़ा है गले में फूलों की माला। हिन्दी अखबार पढ़ रहा है। कुर्सियों पर रजिस्टर, पैम्पलेट लिए तीन सज्जन बैठे हैं, जो चन्दा लेने आए हैं। सामने ग्रामोफोन रखा है, रिकार्ड चल रहा है। बन्द होने पर]

लक्ष्मीकान्त—आप जानते है, कि नारायण कैसी तबियत का लड़का है। नहीं, आज का दिन ऐसे गुजरता? चमन बरस जाते चमन? वह महफिलें जमतीं कि नाम—? दसियों तवाइफें बेचारी मन मार कर चली गई! हुःह! ऐसा भी क्या? अरे वर्ष-गाँठ कहीं इस तरह मनाई जाती है? कहता है—फिजूल खर्ची से बचो, सादगी से काम लो।

एक—(जोर से हँसकर) वा···भाई नारायण बाबू! खूब? बाबा, सादगी से रहने के लिए हम लोगों को हो छोड़ दो न? अरे, भाई ये बातें तुम जैसे लक्ष्मी-पुत्रों को शोभा देती हैं कहीं?

दूसरे—(जो कुछ अधिक उम्र के हैं) तुम्हारे पास तजुर्बा नहीं, किताबी ज्ञान है, इसी से। वर्ना आप जानिए—पैसा पाकर पैसा का सा करना पड़ता है। नहीं तो लोग अच्छी नजर से नहीं देखते—समझे नारायण बाबू?

नारायण—(रुखाई से) जी, मैं खूब समझता हूँ।

एक—(रजिस्टर बढ़ाते, दाँत घिघियाते हुए) तो सेठ जी अब हम लोगों के लिए क्या हुक्म होता है?

ल०—(चोंककर) ओह! मैं भूल ही गया! हाँ, क्या कह रहे थे आप लोग?

दूसरे—(गिड़ गिड़ाते हुए) यही, इस वर्ष-गाँठ के अवसर पर कुछ लोकहित के लिए दान होना चाहिये।

ल०—(गर्व के साथ) जरूर! जरूर लीजिए महाशय! दान के मामले मे तो सब से आगे रहना वाला व्यक्ति हूँ—जानते हो?

सैकड़ों, हजारों, लाखों का, इस जीवन में है दान किया।
तब 'दानवीर' की पदवी से, है जनता ने सन्मान किया ॥

सब—(एक स्वर से) बेशक ! बेशक ! आपकी दान शूरता समाज को गौरव प्रदान कर रही है।

ल०—(खुश होकर) हाँ तो कहिए आप में एक सज्जन (इशारा करके) विद्यालय के लिए—दूसरे अनाथालय, और तीसरे आप…?

तीसरे—(दीन होकर) जी, मैं पुरातत्व-अन्वेषणी-सभा की ओर से आया हूँ। सभा की बिल्डिंग बन रही है न? उसके लिए…

ल० (बात काट कर) मालूम है, सब मालूम है। हर महीने संस्थाओं के प्रचारक कानों में आकर भोंक जाया करते हैं।

सब—(हँसकर) ह: ह: ह: ठीक कह रहे हैं श्रीमान् ! हाँ आपने वादा भी तो किया था—वर्ष-गाँठ के अवसर…

ल०—(बात काटकर) अरे, बाबा ! अब मना कौन कर रहा है ? (चैक बुक निकालकर लिखते हैं। फिर एक एक चैक देते हुए) लो, तीनों संस्थाओं के लिए पाँच-पाँच हज़ार रुपये !

सब—(अत्यन्त खुश हो, उठते हुए) दानवीर सेठ लक्ष्मीकान्तजी की जय हो।

ल०—(हर्षित-स्वर में) सुनिए… । पन्द्रह हज़ार की रक़म छोटी नहीं, बहुत बड़ी रक़म होती है जो मैंने आपको दी है। अब आपका फर्ज़ होता है इस दान की सारे पत्रों में धूम मचादें। विद्यार्थियों, अनाथ बच्चों और शहर के सब स्त्री-पुरुषों के कानों में यह खबर गूँज जाय। और आप, बिल्डिंग की किसी खास जगह पर पत्थर लगवाएँ।

सब—(हाथ जोड़ते हुए) बहुत अच्छा ! बहुत अच्छा ! आज्ञा है ?

ल०—(अपनी ही धुन में) हाँ, और यह ध्यान रहे—पत्थर के अक्षर दो इंची से कम मोटे न हों। ताकि सब आसानी से पढ़ सकें। समझे, दो इंच मोटे।

सब—(सिर नवाकर) जी, सवा दो! कैसी बात कह रहे हैं आप? (जाते हैं)

त्रिलो०—(प्रवेश कर, स्वतः) यहाँ वर्ष-गाँठ मन रही है। उधर मेरे नौनिहाल की जीवन-गाँठ खुली जा रही है। विधाता! क्या तय किया है तूने?

या तो दरिद्रता की ज्वाला से अब बचाले।
या एक दम जलादे, तिल-तिल जलाने वाले॥

(स्वगत पैरों की ओर इशारा करते हुए) बढ़ो, आगे बढ़ो, वैभव के द्वार तक पहुँचो।

सुनानी है वहाँ करुणा जनक दुर्भाग्य की गाथा।
झुकाना स्वार्थ के चरणों में अपना आज है माथा॥

जिभ्या! तू क्यों काँप रही है? वाणी तू क्यों मूक हो रही है? झिझक, संकोच को छोड़, अभय होकर भीख माँग।

विधाता ने यही लिक्खा है इस फूटे-मुकद्दर में।
दिया था जन्म इसही वास्ते धन-हीन के घर में॥

ल०—(दर्प के साथ) कौन है?

त्रिलो०—(दीनता पूर्वक) एक ग़रीब, बदनसीब।

ल०—(तेज़ी से) किस लिए आया है यहाँ? किसने आने दिया तुझे?

त्रिलो०—(गिड़गिड़ाते हुए) दया की भीख माँगने आया हूँ। ग़रीब—पहरेदारों ने रहमकर आने दिया है सेठजी! नाराज़ न हूजिए!

मुसीबत से घिरा हूँ, तंग दस्ती का सताया हूँ।
मदद हो जाय कुछ इस ही लिए चरणों में आया हूँ॥

ल०—(ग़ुरूर के साथ) भाग यहाँ से! (स्वगत) आज ख़ुशी के दिन कम्बख़्त रोने के लिए यहाँ आया है।

त्रिलो० (दीनता पूर्वक) नहीं, रहम कीजिए—सेठ जी! आशा लेकए आपके दर्वाजे पर आया हूँ। निराश न कीजिए।

गिरह कट हूँ न बटमारक, न पेशेवर-भिखारी हूँ।
न डाकू, चोर, ठगिया हूँ, उचक्का हूँ न ज्वारी हूँ॥
ग़रीबी ने किया मजबूर है दर-दर भटकने को।
इसी से कर दिया है ठोकरों में पेश अपने को॥

ल०—(झुँझला कर) बहरा है?

त्रिलो०—(उसी तरह) नहीं, सेठजी बहरा नहीं हूँ। विधाता की ओर से सब-कुछ मिला है।

नहीं मिला है तो सिर्फ वही ही, कि जिससे दुनिया में रोशनी है।
उसी के बल दौड़ती मोटरें है, उसी से अट्टालिकाएँ बनी हैं॥

ल०—(क्रोध से) ख़ामोश! अगर बहरा नहीं है, तो अपनी ही कहे जाता है, दूसरे की क्यों नहीं सुनता ? कह रहा हूँ—भाग यहाँ से।

त्रिलो०—(घुटने टेक कर) रहम! रहम कीजिए—ग़रीब परवर! मेरा छोटा-सा बच्चा भूख से तड़प रहा है, मौत के नज़दीक पहुँचा जा रहा है। एक मुट्ठी अन्न—सिर्फ एक मुट्ठी अन्न ही दिला दीजिए दयामय!

न धन-दौलत की ख्वाहिश है, न ख्वाहिश है मकानों की।
ज़रूरत भूखे-पेटों को है, केवल चार दानों की॥

ल०—(छड़ी उठाकर दिखाते हुए) दूर हो सामने से, नहीं मार खायेगा।

न पाएगा यहाँ से कुछ, समय अपना गवाँएगा।
उधड़ जायेगी चमड़ी गर ज़ुबाँ अपनी हिलाएगा॥

त्रिलो०—(उसी दीनता से) मारिए। बेख़ौफ़ मारिए—सेठजी ! गाली और मार खाना, गुस्सा पीना यही एक ग़रीब की गिज़ा है। लेकिन मारने के पहले यह सोचिए कि विधाता ने आप को पैसा किस लिए दिया है ? इसलिए दिया है कि आप ग़रीबों की ग़रीबी से लाभ उठाएँ ? दुनिया के हक़ों को छीनकर अपनी तिजोरी भरें और मौज से जिन्दगी काटें ? पैसे की ताकत से खिंचकर आने वाला अनाज गोदामों और खत्तियों में भरा रहे, दूसरी ओर मासूम बच्चे भूख से तड़प-तड़प कर प्राण दें ? शर्म करो ! शर्म करो—यह अन्याय, यह बे इन्साफ़ी देश को डुबा कर रहेगी ।

पसीजो हो अगर इन्सान तो, दुखियों के दुखड़ों से।
'भलाई' को ख़रीदो है उचित काग़ज़ टुकड़ों से॥

[नारायण सहानुभूति के साथ देखता है। आँखों में आँसू झलक आते हैं।]

ल०—(क्रोध-पूर्ण) चुप हो। दूसरों के टुकड़ों पर पलने वाले जबाँदराज़ भिखारी ! सँभल कर बोल।

नहीं खाने को पैदा है जो घर में तंग-दस्ती है।
तो क्यों फिर ज़िन्दगी के वास्ते ये जबर्दस्ती है?
यही अच्छा है मर जाओ, अमन दुनिया में कायम हो।
तरक्क़ी पर नज़र आये ग़रीबी मुल्क की कम हो॥

त्रिलो०—(ऊपर की ओर) ओ अन्यायी विधाता !

जिन्हें बख़्शी है मानवता वे धन-दौलत से रीते हैं।
है ख़ुदग़र्जी भरी वे यों मरों को मार जीते हैं॥

(प्रकट) न बनो, पत्थर न बनो—सेठ जी ! रहम की राह पर कठोरता न बखेरो।

दुनिया की ख़ुशनसीबी पानी का बुलबुला है।
बनने के साथ मिटने का रास्ता खुला है॥

ल०—(तेज़ी से) ख़ामोश ! छोटे मुँह बड़ी बात। होश से बोल, इसे मत भूल कि मैं दानवीर सेठ लक्ष्मीकान्त के सामने खड़ा हूँ।

ये सारा शहर जिसके नाम से है काँपता थर थर।
झुकाते जिसके क़दमों में, हमेशा अपने सर अफ़सर॥
कि जिसका नाम सूरज की तरह दुनिया में रोशन है।
वो लक्ष्मीकान्त घर जिसके बिछा लक्ष्मी का आसन है॥

त्रिलो०—(उपेक्षा से) इतना अहंकार ?

प्रभुता मिली है, वह है दुनिया की भलाई को।
मत छोटा कभी समझो अपने सगे भाई को॥
है व्यर्थ जो अभिमान की चोटी पै खड़े हो।
छोटों की छुटाई से ही दुनिया में बड़े हो॥
छोटे बड़े का फ़र्क़ यहाँ, मारता खंजर।
श्मशान में हैं किन्तु सभी एक बराबर !!

नारायण—(उठ कर आगे आकर) सच कह रहे हो भाई ! दुनिया की हर चीज़ को, गहराई से देखने वाली आँखें, ग़रीबों के शरीर में ही होती हैं। ग़रीब, खोकर पाते हैं; और पैसे वाले पाकर खोते हैं।

ये इज़्ज़त आबरू या इल्म लेते हैं सभी ज़र से।
नसीहत जो उन्हें मिलती है वह दुनियावी ठोकर से॥

ल०—(डपट कर) नारायण ! शर्म नहीं आती, पिता के मुक़ाबिले में एक ग़रीब-भिखमंगे का पक्ष लेता है ?

नारायण—(विनय पूर्वक) पिता और भिखमंगे का प्रश्न सामने नहीं है। न्याय-अन्याय की बात है—पिताजी !

मिटा है वह हमेशा जो, ख़ुदी को दिल में लाया है।
बना है वह कि ख़ुद को, जिसने सेवा में लगाया है॥
मुझे लगता है ये कोई मुहब्बत का भरा पुतला—
हमें कोई सबक देने, भिखारी बनके आया है।

ल०—(क्रोध-पूर्ण होकर) चुप हो नारायण ! मुझे तेरी ये हरकतें बर्दाश्त नहीं ।

मुझे स्वीकार है जो, तू उसे इनकार करता है ।
जिसे मैं दूर करता हूँ, उसे तू प्यार करता है ॥

(त्रिलोचन की ओर) आनन्द के दिन में कलह के बीज बोने वाले हत्यारे ! दूर हो सामने से । बदमाश…! बेहया कहीं का ।
[अपनी छड़ी मारते हैं, त्रिलोचन की भोंह से खून टपकता है ।]

त्रिलो०—(खून को हाथ से देखते हुए) खून ? (घुटने टेक कर)

यह खून नहीं है, पानी है, पानी क्या रंगत लायेगा ?
कितना ही इसे बहा डालो यह नहीं कभी गर्मायेगा ॥

मारो । मार डालो । जान निकाल लो ।

मैं इसे मानने वाला हूँ—'कुदरत अच्छा ही करती है ।'
वैभव के दर्वाजे पर ही, मेरी दरिद्रता मरती है ॥
मरने को, भूखों मरता था, जीने के लालच था आया ।
दाता की सूरत में मैंने यमराज जहाँ अपना पाया ॥

दानवीर ! मौत का दान देकर भी, आज तुम्हारी पूजा में कमी नहीं आएगी । लेकिन याद रक्खो—अपनी पवित्र-आत्मा के सामने तुम निर्दोष नहीं हो सकते ।

खुलेगा सत्य जिस दम, उस समय आँसू बहायेगा ।
गुनाहों पर वहाँ पैसा, न परदा डाल पायेगा ॥

नारायण—(त्रिलोचन को प्यार से उठाते हुए) उठो । उठो भाई ! ठोकरों से न घबराओ ! ये असमर्थ-रक्त की बूँदें एक दिन वह करिस्मा दिखायेंगी कि संसार डोल जायेगा । ग़रीबी और अमीरी के बीच की खाई भरने के लिए अभी बहुत खून की जरूरत पड़ेगी ।

हिला दगीं कि दुनिया को, ये ठण्डे ख़ून की बूँदें।
बना पाइ खताबारों को कब क़ानून की बूँदें ?

त्रिलो०—(उठकर) कठोर-ज़मीन से पैदा होने वाले—कोमल फूल ! धन्य हो तुम !

पिघलता है जो दुख से, रहम जो सीने में लाता है।
वही है आदमी, जो आदमी के काम आता है॥

ल०—(क्रोध में तने हुए दोनों के बीच में आकर) दूर हट, ओ, नालायक लड़के दूर हट ! (नारायण को धक्का देकर त्रिलोचन की ओर)—भाग, यहाँ से कमीने कुत्ते ! यह हिम्मत कि जबाँ दराजी करे, गुस्ताखी से पेश आए ? बोल समझा क्या है तूने ?

(छड़ी से मारते हैं, त्रिलोचन गिर पड़ता है।)

त्रिलो०—(पड़े हुए ही)

नहीं कुछ आप दे सकते, न मैं कुछ आप से लूँगा।
है लेनी जान तो लेलो, ख़ुशी से जान दे दूँगा॥ (उठता है)

नारायण—(विह्वल होकर) पिता जी ! पिता जी ! बेइन्साफ़ी से क़दम खींचिए। मुर्दे की गर्दन पर वीरता न आज़माइए।—हटिए, हटिए—इन्सानियत पर स्याही न उँडेलिये।

ल०—(झिड़क कर) दूर हट ! मुझे तेरे उपदेश की ज़रूरत नहीं।

नारायण—(छड़ी पकड़ता है) पिताजी !......

(लक्ष्मीकान्त त्रिलोचन को धक्के देकर निकाल देते हैं।)

—पटाक्षेप—

चौथा दृश्य

[स्थान—त्रिलोचन का मकान। लक्ष्मी बच्चे की खटिया के पास बैठी रो रही है। बच्चा चुप है।]

लक्ष्मी—(आँखें पोंछते हुए) क्या हुआ ? क्या हुआ तुझे मेरे भैय्या ! तू बोलता क्यों नहीं ? पानी क्यों नहीं माँगता ?

अरे, अरे! यह क्या हुआ—आँखें फटी हुई हैं, मुँह खुला हुआ है—देह बर्फ़ हो रही है? हे, ईश्वर!…(रोते हुए) हे परमात्मा! यह क्या हुआ मेरे भैय्या को? नहीं, नहीं ऐसा न करो भगवान! जरा ठहर! जरा ठहर मेरे भैय्या! पिताजी अभी तेरे लिए खाने को लाते होंगे। देख, तेरे ही लिए आज वे दूसरे के दर्वाज़े पर हाथ पसारने गए हैं। माँ को भूख से तड़पते हुए देखकर भी उन्होंने ज़ुबान नहीं हिलाई थी, किसी से कुछ नहीं कहा था। पर तेरे लिए आज वे भीख माँगने गए हैं। उनका इन्तज़ार करो-भैय्या! वे आते ही होंगे। (सकोरा ओठों से लगा कर) पानी, पानी पीलो भैय्या!…पानी भी नहीं पीते? क्यों नहीं पीते…? (रोती है! इसी समय ख़ून से लथपथ त्रिलोचन का प्रवेश, उदास मुँह चोट से कराहता हुआ)

त्रिलो०—(विद्रोही-स्वर में) रोओ, रोओ ख़ूब जी-भर के रोओ लक्ष्मी! रोने के लिए ही हम लोगों का जन्म हुआ है।

मर जाने में हित है उनका, इससे बढ़कर आराम नहीं॥
हँसने वालों को दुनिया में, रोने वालों का काम नहीं।

ल०—(विह्वल होकर) पिताजी, पिताजी! यह क्या हुआ है? (ख़ून की ओर इशारा करके) ख़ून? ख़ून से लथ-पथ हो रहे हो! किसने मारा है तुम्हें?

त्रिलोचन—(शान्त होकर)

मुझे मारा है उसने जो अज़ीमुश्शान-नेता है।
किसी को दान देता है, किसी की जान लेता है॥
जो बनकर जोंक, लोहू चूसता है तंग दस्तों का—
कि होकर नारकी, आसन जो लेता है फ़रिश्तों का॥

(बच्चे की ओर देखकर) हँय! यह क्या हुआ? मेरा लाल चल बसा! (रोते हुए) ओफ़! बदनसीब बाप मुँह भी नहीं देख सका। भगवान!…

या तो दीनों के कोमल मन लोहे के पत्थर के कर दो।
या कुछ उदारता ही लेकर, उनकी खाली मुट्ठी भर दो॥

(सिर थाम कर बैठ जाता है। फिर स्वगत) अब क्या होगा—भगवान ? बेगुनाह भूखे-बच्चे की लाश, क्या नंगी ही श्मशान जाएगी ?

(आँखें पोंछता है, लक्ष्मी रोती है, तभी हाथ में टिफ़िन कैरियर लिए नारायण का प्रवेश)

नारायण—(शीघ्रता पूर्वक) त्रिलोचन ! त्रिलोचन ! अपने भूखे बच्चे का पेट भरो। लो (टिफिन कैरियर देते हुए) उसे खाने को दो।

त्रिलो०—(चौंक कर) कौन, लक्ष्मी-पुत्र नारायण ? खाना लेकर मेरे घर पधारे हैं ? (रोते हुए) लेकिन दयामय नारायण बाबू बच्चे को तो मेरे आने से पहले ही भूख की ज्वाला ने खा लिया।

नारायण—(अचरज और दुख के साथ) हँय ! तुम्हारा बच्चा चल बसा ? ओफ़...!! (बच्चे की ओर देखते हुए)

विधाता ! क्या अभागों से बना अपराध तेरा है ?
जो इनके सारे जीवन में अँधेरा ही अँधेरा है॥

(त्रिलोचन की ओर) न रो ओ त्रिलोचन !

जो जीता है, वो मरता है यही दुनिया का चक्कर है।
न जिसमें मौत पहुँची हो नहीं ऐसा कोई घर है॥

(नारायण लक्ष्मी की ओर देखता है, लक्ष्मी सिर झुका लेती है।)

पटाक्षेप

पांचवां दृश्य

[स्थान—सेठ लक्ष्मी कान्त की कोठी। चार व्यक्तियों के बीच में घिरे हुए सेठ लक्ष्मी कान्त बैठे हैं। बातें हो रही हैं।]

ल०—(रुखाई के साथ) समझते नहीं आप लोग, कैसे आदमी हैं ? एक बार, दो बार, हजार बार कह दिया—हमें अभी बच्चे की शादी नहीं करनी। हुःह ! क्या मुसीबत है ?

एक—(विस्मय से) ऐं ? अभी शादी नहीं करनी ? क्या कहना चाहते हैं—सेठ साहिब ! नारायण बाबू की उम्र तो अब कच्ची नहीं है। २४-२५ साल की होगी। है न ?

दूसरे—(जल्दी से) जरूर जरूर। कुँवर साहिब बिल्कुल शादी के योग्य हैं। हमारी तो प्रार्थना है······

लक्ष्मी—(क्रोध से) खाक प्रार्थना है। माफ़ कीजिए, आप लोग मुझे ! खुलासा चाहते हैं, तो मुझे आप में से किसी का भी सम्बन्ध स्वीकार नहीं—समझे ?

तीसरे—(व्यग्रता से) लेकिन मेरी बात तो तीन वर्ष से चल रही है, तय हो चुकी है ! शुरूआत की रस्में भी अदा हो चुकी हैं। फिर यह आप क्या फ़र्मा रहे हैं ?

ल०—(झिड़क कर) चुप रहिए, कुछ तय-त्रय नहीं हुआ। शादी एक तरह का सौदा है। सैकड़ों लड़की के बाप बातें चलाते हैं सब अपनी पक्की समझते हैं, सब नजर भेंटें देते हैं। लेकिन सौदा पटा, पटा न पटा। मेरा उसूल है—फेरे पड़ जाने पर शादी पक्की होती है।

चौथे—(आश्चर्य से) यह क्या कह रहे हैं—सेठ साहिब ! क्या शादी भी व्यवसाय है ?

ल०—(दृढ़ता से) व्यवसाय नहीं है, तो क्या है ?

नहीं घाटे का खतरा है, न क़ानूनी इजाफ़ा है।

ये वह व्यवसाय है जिसमें, मुनाफ़ा ही मुनाफ़ा है।

तीसरे—(घबरा कर) यह गजब न ढाइए सेठ साहिब ! मेरी कारी कन्या को दोष लग जायेगा। आखिर जबान भी कोई चीज होती है। इसी से बेटा-बेटी पराये होते है।

ल०—(तैश के साथ) ज़बान ? अगर तुम लोगों के साथ ये ज़बानी जमा-ख़र्च न किए जाँय, तो जान बचाना मुश्किल पड़ जाय।

यम दूतों से पड़ जाता है, मरने वाले जन का पाला।
बस, उसी तरह घिर जाता है, तुम लोगों से लड़के वाला।
फिर जान बचाने मजबूरन, अपनी जबान दे देता है।
गर सौदा सही नहीं होता, तो क्या कुछ तुम से लेता है ?

दूसरे—(दीनता से) हम लोगों से क्या खता हुई, कि हमारा किसी का सम्बन्ध स्वीकार नहीं ? उस वजह को जाहिर कर दीजिए।

ल०—(नरम होकर, हँसते हुए) वजह ? वजह यह है और मैं उसे साफ़ कहे देता हूँ कि जहाँ से मुझे ज्यादह दहेज मिलेगा शादी वहीं की तय होगी। समझे ? बेकार सिर पच्ची में लाभ नहीं है।

पहले—(आशा के साथ) हाँ, अगर यह बात है, तो मैं पचास हजार का वादा करता हूँ।

दूसरे—(पहले की ओर आँखें तरेर कर देखते हुए) हूँ ! ये पचास की कह रहे हैं, मैं पिचहत्तर हजार दूँगा—बोलिए 'हाँ !' सौदा जल्द पक्का होना चाहिए।

तीसरे—(गिड़गिड़ाकर) रुपए के लालच में मेरी पक्की शादी न छोड़िए सेठ साहिब ! जबान न काटिए। मैं ग़रीब आदमी हूँ, पान-फूल से सत्कार कर दूँगा—इतना धन मेरे पास नहीं है, कहाँ से ला सकता हूँ ?

ल०—(रुखाई से) अगर ग़रीब आदमी हो, तो ग़रीबों में शादी क्यों नहीं करते ? क्या ग़रीबों के घर लड़के नहीं हैं ? क्यों सेठ लक्ष्मीकान्त के दर्वाजे पर टक्कर मारने आए हो ? वापस लौट जाओ यहाँ से। नर्क में रह कर स्वर्ग का स्वप्न मत देखो।

चौथे—(व्यग्रता से) फालतू बातों पर ध्यान न दीजिए, छोड़िए इन्हें। हाँ, आप कह रहे थे—जो ज्यादै दहेज देगा, शादी वहीं होगी। है न ?

ल०—(प्रसन्न होकर) बिल्कुल।

चौथे—(गर्व के साथ) तो मैं पूरा एक लाख रुपया देने के लिए तैयार हूँ। बोलिए, स्वीकार है—सम्बन्ध ?

ल०—(दृढ़ता से) स्वीकार।

चौथे—(उतावली से) फिर लौट-पलट तो न होगी ?

तीसरे—(स्वगत) अगर किसी ने सवा लाख का वादा न किया।

ल०—(दृढ़ता पूर्वक) ऐसा नहीं हो सकता। (रुककर) क्या कह रहा था, भूल गया·········

तीसरे—(स्वगत) भूल जाना पैसे वालों का नया रोग नहीं है। वे अहसान भूल जाते हैं अपमान भूल जाते हैं, धर्म-कर्म और ईश्वर तक को भूल जाते हैं।

ल०—(सोचकर) याद आया। हाँ, आप अपनी लड़की का फोटो भेज दीजिए। और भी फोटो पड़े हैं, सब को मिला कर नारायण को दिखलाऊँगा। यक़ीन रखिए—आपकी कन्या ही उसे पसन्द आएगी।

चौथे—बहुत अच्छा।

पटाक्षेप

छटवां दृश्य

[स्थान—त्रिलोचन का घर। लक्ष्मी और नारायण खड़े बातें कर रहे हैं। लक्ष्मी के कपड़े साफ़ हैं, मुँह पर प्रसन्नता है।]

नारायण—(प्रेम से) मैं जो चाहता हूँ, उसे तुम समझ कर भी नहीं समझ रहीं—लक्ष्मी ! जागते हुए को जगाना सहज नहीं है, इसे मैं जानता हूँ।

ल०—(दुलार के स्वर में) आज कैसी बातें कर रहे हो—नारायण ? ये नई बात कहाँ से पैदा हुई ?

नारायण—(दीन होकर) सब्र की हद होती है—लक्ष्मी ! ये नई बात नहीं है !

कलेजे और आँखों में, जो मुद्दत से समाई है।
पुरानी बात है लेकिन जबां पर आज आई है ?

ल०—(मुस्कराकर) आखिर तुम चाहते क्या हो ? किस चीज की कमी है तुम्हारे यहाँ ? भिखारी से भीख माँगने चले हो, कहाँ तक आशा साथ देगी ?

नारायण—(मुस्कराते हुए)

मुझे आशा है, आशा ये निराशा को न लाएगी।
भिखारी से भिखारी को, भी मुँह माँगा दिलाएगी॥

सुन्दरी ! लहराते हुए समुद्र से कभी प्यासे की प्यास नहीं बुझी ! एक बूँद भी पानी दिखलाई न देने वाले पहाड़ों ने हमेशा दुनिया की प्यास बुझाई है।

ल०—(मुग्ध होकर) ठीक कह रहे हो, नारायण ! लेकिन मुझ दरिद्र दुःखिनी से क्या चाहते हो ?

नारायण—(संक्षेप में) यही चाहता हूँ—लक्ष्मी ! कि लक्ष्मी मेरी गृह-लक्ष्मी के नाम से पुकारी जाय।

ल०—(मुदित मन से) असम्भव ! असम्भव है नारायण ! तुम इतनी ऊँचाई पर हो, कि वहाँ तक मेरी दरिद्रता नहीं पहुँच सकती।

स्वयं ही सोचकर देखो, कहाँ तुम हो, कहाँ मैं हूँ ?

नारायण—(बात काटकर)

मुहब्बत से तुम्हीं देखो, जहाँ तुम हो वहाँ मैं हूँ॥
असम्भव को भी जो सम्भव की सूरत में दिखाता है।
कि उसको प्रेम कहते हैं कि जिसका दिल से नाता है॥

रूप की रानी! प्रेम ग़रीबी-अमीरी को नहीं, हृदय को देखता है हृदय से हृदय को खींचने की ताक़त रखता है।

नहीं कोई ऊँचाई पर, नहीं कोई रसातल में।
कि रखते फ़र्क कब प्रेमी, महल में और जंगल में ?

ल०—(गम्भीरता से) ठीक कहते हो, नारायण! प्रेम के मिठास में फ़र्क नहीं होता। लेकिन पैसे वालों की दुनिया में और ग़रीबों की दुनिया में फ़र्क होता है। पैसेवाले जीने के लिए मरते हैं, और ग़रीब, मरने के लिए जीता है।

जुदे रस्ते हैं जब, मिल बैठने का रास्ता क्या है ?
ग़रीबों का अमीरों के, वतन से वास्ता क्या है ?

अँधेरे और उजाले का समझौता नहीं होता तुम अपने इस प्रस्ताव को प्रकाश में न लाओ,—नारायण बाबू।

नारायण—(दृढ़ता से) भूलती हो सुन्दरी! उजाला, अँधेरे को अपने में मिलाकर, उसकी कालोंच धो डालता है।

वे दोनों एक हो रहते हैं, लेकर प्रेम की छाया!
कि तब दुनियाँ की आँखों को दिखाती एक ही काया॥

मेरा विश्वास करो लक्ष्मी! मैं वचन देता हूँ कि मेरी शादी तुम्हारे साथ ही होगी। मैं तुम्हें प्यार करता हूँ।

जहाँ पर प्यार का रस है, वही शादी का नाता है।
गृहस्थी स्वर्ग के नजदीक वह ही अपनी लाता है॥

ल०—(जिज्ञासा से) क्या यह हो सकता है—नारायण ?

त्रिलोचन—(प्रवेश करके, ज़ोर से) हर्गिज़ नहीं। स्वप्न में भी ऐसा ख्याल न करना—बेटी। दरिद्री की कन्या, एक करोड़पति की पुत्र-बधू नहीं बन सकती। मैं कहता हूँ, हर्गिज़ नहीं बन सकती।

नहीं मुमकिन कि दौलतमन्द, राजी हो लँगोटी पर।
असम्भव है, अपाहिज चढ़ सके, जो गिरकी चोटी पर॥

नारायण—(शान्ति से) ग़लत ख़याल बना बैठे हो त्रिलोचन ! दुनिया में कोई चीज़ असम्भव नहीं है। आत्म-बल के सहारे, खड़े होने वाले प्रेम को लेकर, करनेवाला सब कुछ कर डालता है।

अंजना सती ने पत्थर को, आहों से मौम बना डाला।
सीता ने लेकर अटल-प्रेम, पानी-पानी कर दी ज्वाला॥
द्रोपदी दुलारी की तुमने—यह पावन-कथा सुनी होगी—
लज्जा ढकने को आया था, सब को लज्जा ढकने वाला॥

त्रिलो०—(गम्भीरता से) सही कहते हो नारायण बाबू ! लेकिन विचारिए—वह युग, प्रेम और श्रद्धा का युग था। और आज का युग पैसे का युग है। आज गुणों की, इल्म की, आदमी की किसी की क़द्र नहीं है। सिर्फ़ पैसे की पूजा है।

नराधम, नीच, हत्यारे, यहाँ सन्मान पाते हैं।
भिखारी बन के उन के सामने इंसान जाते हैं॥
जो अपने ज़ुल्म से, हैवानियत में सबसे आला है।
उसीके नाम का देता दिखाई बोल बाला है॥

नारायण—(दुलार के स्वर में) यही समस्या है त्रिलोचन ! आज आदमी से पैसे की इज्जत नहीं है, पैसे से आदमी की इज्जत है। लक्ष्मी के गुलामों ने पैसे को आदमी से बड़ा मान लिया है। नहीं जानते, कि पैसा आदमी से पैदा होता है लेकिन आदमी पैसे से पैदा नहीं किये जा सकते।

हुआ पैदा है जब वह मर्दमी से।
बड़ा कैसे है, पैसा आदमी से॥
बड़े छोटे का यह आँकड़ा है।
पिता से पुत्र, किसका बड़ा है?

परन्तु गम्भीरता से विचारो त्रिलोचन ! हर ग़रीब जिस तरह दया का पात्र नहीं है, सब पैसे वाले भी उस तरह हृदय-

हीन और नराधम नहीं हैं। उनके शरीर में भी तुम्हारी तरह रक्त बहता है, उनके सीने में भी दिल धड़कता है।

ये सोचो, है सदा अच्छे-बुरे का ज्ञान उनको भी।
विधाता से मिला है प्रेम का वरदान उनको भी॥

त्रिलो०—(हर्षित स्वर में) इस प्रत्यक्ष-सत्य से मुझे इन्कार नहीं।

तुम्हारी शकल में मैंने, सदा आनन्द पाया है।
जो दिल रखता है सीनेमें, वो दौलतमंद पाया है॥

नारायण बाबू ! मैं अपनी लक्ष्मी को आपके चरणों में बाखुशी सौंपने को तैयार हूँ, परन्तु चाहता हूँ कि ग़रीब-कन्या का अपमान न हो, तय पाया हुआ सम्बन्ध ठोकरें न खाए। किस भाग्यवान पिता को अपनी कन्या, धन-कुवेर के घर में देते हुए हर्ष नहीं होता ?

पिता का हृदय कहता है, सुता जाए सुखी-घर में।
बिताए जिन्दगी के पल, खुशी में, प्यार-आदर में॥

नारायण—(लक्ष्मी की ओर देखकर) अगर मेरे ऊपर विश्वास है, तो मेरे वचनों पर विश्वास करो। मैं वचन देता हूँ तुम्हें।

वचन के मूल्य को जो आदमी पहिचानता है।
निभाते हैं वचन कैसे इसे भी जानता है॥

त्रिलो०—(मुग्ध हो, ऊपर की ओर) धन्य हो भगवान !

आने पर अवसर कर देते, मुश्किल को आसान।
धनवालों की दुनिया है, तो निर्धन के भगवान॥

— पटाक्षेप —

सातवाँ दृश्य

[स्थान—सेठ लक्ष्मीकान्त की कोठी। सेठ जी बैठे हैं, हाथ में एक तस्वीरों का पैकिट है। नारायण आता है।]

नारायण—आपने मुझे बुलाया था—पिताजी !

ल०—(नजर उठाकर देखते हुए) हाँ, बुलाया था। आओ, बैठो बेटा। बात यह है—तुम्हारी शादी की चिन्ता है। वह और हो जाय तो मेरे सिर का बोझ हल्का हो जाय—समझे? और इसके लिए—यह देखो (पैकिट खोल कर डेढ़-दर्जन लड़कियों के चित्र सामने रख देते हैं) इतनी लड़कियों के फोटो तुम्हारे सामने हैं। पसन्द कर लो। सब एक से एक सुन्दर और सुशील हैं।

नारायण—(चित्र देखने के बाद) सभी कन्याएँ अपने-अपने माँ-बाप की दुलारी हैं। मैं किसी को बुरा नहीं कह सकता-पिता जी!

सभी अच्छे हैं अच्छापन किसी ने कब चुरा पाया।
बुरा देखा, तो दुनिया में न अपने से बुरा पाया।

किन्तु पिता जी! मैं पूछता हूँ, क्या यह मूक-कन्याओं के साथ अन्याय नहीं है? उनके स्वाभिमान, उनकी प्रतिष्ठा का यह अनादर नहीं है? उनकी निरीहता और परवशता पर से क्या यह लाभ उठाना नहीं है?

दहकती जा रही है आग ये धन की बदौलत से।
कि दौलत के तमाशे हैं, जो खाली हैं शराफ़त से॥

ल०—(जरा तीखे स्वर में) नारायण! क्या वजह है, कि तू मेरे हर काम और हर अल्फ़ाज की खिलाफ़त करता है?—एक बार फिर कहे देता हूँ—मुझे ये बर्दाश्त नहीं।

नारायण—(गंभीरता से) वजह? वजह यह है पिता जी कि आपके दिल पर दौलत ने सवारी कर रखी है, और मैं स्वयं उस पर सवार हूँ।

नहीं दौलत की गर्मी से, मुझे आई है बेहोशी।
मैं अपने होश में यह देखता हूँ, हूँ नहीं दोषी॥

ल०—(क्रोध-पूर्ण) चुप हो। हर समय वही, धनवानों की निन्दा ग़रीबों की हिमायत ? नारायण इस तरह काम नहीं चल सकता। मालूम होता है—विधाता की भूल है यह कि जो तू मेरे घर में पैदा हुआ है। दरिद्री के घर में जन्म होना चाहिए था तेरा !

विधाता की ये ग़लती हर समय मुझको दिखाती है।
कि नफ़रत है अमीरी से, ग़रीबी तुझको भाती है॥

नारायण—(गंभीरता से) पश्चाताप न कीजिए—पिताजी ! विधाता की इस भूल को आप स्वयं सुधार सकते हैं। मैं उस ग़रीबी को, अमीरी से ज्यादह क़ीमती समझता हूँ—जो दूसरों की इज्ज़त को इज्ज़त नहीं समझती, दूसरों के प्यार को प्यार नहीं मानती और दूसरे मनुष्य के साथ मनुष्यता का बर्ताव नहीं करती।

अमीरों का हृदय रँगरेलियों में मस्त बहता है।
ग़रीबों को प्रभू का नाम हरदम याद रहता है॥

ल०—(क्रोध-पूर्ण) ठीक कह रहा है, रवैया न बदला तो ग़लती सुधारनी ही पड़ेगी। (रुक कर) ग़रीबी ? दुनियाँ की सबसे बड़ी व्याधि ?

ग़रीबी की जो ख्वाहिश है, तो क्यों रखता है वह जी में।
अमीरी से छुड़ा पीछा, बिता जीवन ग़रीबी में॥

नारायण—(गम्भीर स्वर में) पिताजी ! मैं स्वयं अपने को ग़रीब ही समझता हूँ। मोटा खाता हूँ, मोटा पहिनता हूँ और अमीरी की सारी बदकारियों से अपने को दूर रखता हूँ। अभागे दरिद्र भारत में भर-पेट खाने का अर्थ है, दूसरे को भूखा मारना अच्छे कपड़े पहिनने का मानी है—ग़रीब भाइयों को नंगे रहने के लिये मजबूर करना।……(शान्ति से) पिताजी अमीरी बुरी चीज नहीं है। अगर वह ठीक तरह अमल में लाई जाय। लेकिन

आज वह पाप इसलिए है, कि सैकड़ों दरिद्रों को, मौत के मुँह में ढकेल कर पूँजीपति बना जाता है।

ल०—(झुँझला कर) बस, बन्द करो व्याख्यान! मुझे तेरे उपदेश की ज़रूरत नहीं है—नारायण! मैं जानता हूँ—आज संसार में पैसे का क्या स्थान है?

नारायण—(दृढ़ स्वर में) काश! आप यह भी जानते कि मनुष्यता से पैसे का क्या सम्बन्ध है?

ल०—(क्रोध-पूर्ण, छड़ी उठाते हुए) दूर हो नारायण मेरी आँखों के सामने से। मुझे ये जबाँदराजी बर्दाश्त नहीं।

नारायण—(सिर नवाकर) जो आज्ञा पिताजी! (जाता है)

ल०—(स्वगत) पागल छोकरा! अमीरी में रह कर, अमीरी से दुश्मनी करने चला है। आज अगर घर से निकाल दूँ—तो कल ही अमीरों के तलवे सहलाता दिखाई दे। लेकिन नहीं, मैं अभी उसे निकालने की ग़लती नहीं कर सकता—उसके द्वारा एक लाख रुपए पैदा किए जा सकते हैं—पूरे एक लाख!

पटाक्षेप (जाते हैं)

आठवाँ दृश्य

[स्थान—सेठ लक्ष्मीकान्त का ज़नान खाना। चिकें पड़ी हैं। भीतर औरतें बैठी मालूम देती हैं। बाहर एक दर्जन लड़कियाँ सिमिटी-सिकुड़ी बैठी हुई हैं, जो दिखने आई हैं। सामने दो कुर्सियाँ हैं जिन पर लक्ष्मीकान्त और नारायण बैठे हैं। लक्ष्मीकान्त प्रसन्न हैं, नारायण उदास-मुख।]

ल०—(प्रेम के स्वर में) बोलो, बोलो न बेटा! कौन सी लड़की पसन्द है? ये सब ऊँचे घरानों की लड़कियाँ हैं, जो तुम्हारे सामने बैठी हैं। जो तुम्हारे मन में समाए, उसके लिए अपनी राय दे दो। (रुक कर) क्यों, बोलते क्यों नहीं—बेटा?

यह संकोच का समय नहीं है, जिन्दगी-भर के लिए साथी तज़-बीज़ करना है। जानते हो इसे ?

नारायण—(संक्षेप में) मैं नहीं जानता।

ल०—(गंभीर होकर) तुम नहीं जानते ? मैं जानता हूँ—मैं अपनी राय पहले दिये देता हूँ। वह देखो—पहले नम्बर पर जो कन्या है उसके ओठ भारी हैं। दूसरी की नाक कुछ बद-सूरत-सी दीखती है। और तीसरी…? (लड़की से) उठना बेटी ज़रा। (लड़की शर्माती हुई उठ खड़ी होती है) हाँ, ज़रा चलना तो ! (लड़की चलती है) बस, बैठ जा बेटी ! (नारायण से) देखा—इसकी चाल कुछ भद्दी है। है न ? और चौथी की आँखों में कालोंच कम है। पाँचवी की उँगलियाँ लम्बी हैं। और छटवीं

नारायण—(रुखाई से) बस, बस रहने दीजिए पिताजी…!

ल०—(हँसते हुए) मैंने सब लड़कियाँ पहले ही ख़ूब अच्छी तरह से दिखा-भरा ली हैं।…हाँ, अब अपनी राय दो।…

नारायण—(गंभीर होकर) राय ? मेरी राय आपकी इच्छा के विरुद्ध ही नहीं है, प्रयत्न के विरुद्ध भी है। कन्याओं की मौजूदगी में यह प्रश्न और भी बेहूदा है, मुझ से यह हृदय-हीनता का व्यवहार देखा भी नहीं जाता—पिताजी ! शर्म से आँखें नीची हो रही हैं। मुझे जाने दो।

ल०—(तेज़ी से) कहाँ जाने दूँ ?

नारायण—(शान्त स्वर में) इस नरककुण्ड के बाहर ! जहाँ केवल स्वार्थ और अपना बड़प्पन ही नहीं, दूसरे का हृदय भी देखा जाता है।

ल०—(क्रोध से) नारायण !…

नारायण—(संयत-स्वर में) पिताजी ! (रुक कर) आदमी के दिल से विचारिए, विवेक की आँखों से देखिए—दौलत की मदहोशी आपको कहाँ ले जा रही है ? इधर पैसे के बल पर

आप घर में लड़कियों की नुमायश लगा रहे हैं, टोकरी में भरे बेरों की तरह उन्हें छाँट रहे हैं। क्या यह अन्याय नहीं है? कितनी कठोर-परीक्षा है, कितना करारा अपमान है उनका? उनके सूखे ओठों से पूछिए, काँपते-स्वर से पूछिए; धड़कते दिल और शर्म से झुके हुए चेहरे से पूछिए—कि वह आपको क्या समझतीं हैं—नर या नारकी?

ल०—(क्रोध से गरजते हुए) चुप हो नारायण!

नारायण—(शान्ति से) चुप हो जाने-भर से पूँजी पतियों का यह जुल्म नहीं रुकेगा—पिताजी! उधर देखिए—हज़ारों ग़रीब तन्दुरुस्त नौजवान शादी की फिराक़ में सजे-बने घूम रहे हैं। और शादी नहीं होती। कितने अन्याय की बात है? और इधर, हर पैसे वाला अपने सड़े-घुने बच्चे के लिए भी लड़कियों की नुमायश जोड़ रहा है।

बुझादी रोशनी दिल की, दिखाती थी जो उजियाला।
कि पैसे की बग़ावत ने, रहम का क़त्ल कर डाला॥
है पैसा पास तो हर शख़्श अपने दिल का राजा है।
नहीं फिर वास्ता इन्सानियत का क्या तकाज़ा है?

ल०—(डपट कर) ख़ामोश!... (स्वगत) ओफ़्! पाप के फल से ही नालायक औलाद घर में जन्म लेती है। पिता के दिल में अगर अपने बेटे के लिए ममता न भरी होती, तो ऐसे बेटे का घला घोंट देता। (नारायण से) नारायण! बाप की बात को नादानी समझने की बुद्धिमानी न दिखाओ। सोचो—इन लड़कियों के अपमान का जिम्मेदार कौन है? मैं या इनके माँ बाप?

जो अपनी शान की ख़ातिर, इन्हें बे शान करते हैं।
सचाई तो यही है वे स्वयं अपमान करते हैं॥

नारायण—(गम्भीरता से) बेशक यही बात है। अपनी सन्तान के मान-अपमान का ख़याल रखना पिता का फ़र्ज़ है। मगर कन्या का पिता आज इतना अन्धा हो रहा है कि उसे कुछ नहीं सूझता। बड़े-घर में कन्या को विवाहने की लालसा ने उसे दीन बना दिया है। वह जानता है कि बड़े घरों में कन्याओं की भीड़ लगती है, खूब देखा-परखा जाता है, ऐब लगाए जाते हैं और वर्षों नाक रगड़ने के बाद भी भरपूर दहेज देना पड़ता है। लेकिन शान का भूखा—नाक की ख़ातिर—सारे अपमानों को चुपचाप पी जाता है।

ठुकराई जाती है इज़्ज़त, अभिमान मरोड़ा जाता है।
करते हैं जो कुछ बनता है, बाक़ी क्या छोड़ा जाता है?
पक्की हो जाती हैं बातें, सब नेग-रस्म भी चलते हैं।
शादी का मौक़ा आने पर, देखा है रंग-बदलते हैं॥

ल०—(रुख बदलकर) नारायण! दूसरों की नहीं, अपनी बात कहो। कहो—कौन-सी कन्या पसन्द करते हो?

नारा०—(नरम-स्वर में) पिताजी! आप पैसे वाले हैं। सब कुछ कर सकते हैं। इस मनहूस प्रथा का नाश कर, कन्याओं की सन्मान-रक्षा कीजिए। अगर आप लोग बग़ैर दूसरे से खुशामद कराये तत्काल शादी कर लिया करेंगे, तो कन्या-पिताओं को ये मौक़ा नहीं मिलेगा। वे अपनी स्थिति के किसी भी वर के साथ शादी करने को मजबूर होंगे। ग़रीब भी परेशान न होंगे।

आएगी फिर काम में भारत की यह नीति!
लायक ही सों कीजिए ब्याह, बैर और प्रीति!!

ल०—(झुँझलाकर) बहस बन्द करो नारायण! यह मुझे ना पसन्द है। मैं चाहता हूँ तुम्हारी शादी शानोशौक़त के साथ हो।

नारायण—(धीरे से) भले ही दूसरों के अरमान कुचले जाँय। भले ही भोली भाली कन्याओं का अपमान हो। ग्यारह कन्याओं को ऐब लगा कर एक कन्या से कहा जाय—'हाँ यह कुछ ठीक है!' क्या यह इन्सानियत के बाहर का बर्ताव न होगा?—पिता जी! हमारी बेटियाँ भी इसी तरह दूसरों के घर अपमानित हो सकती हैं।

'बुरा' जो हमें लगता है, 'भला' किसको लगेगा वह?
हमें जो कष्ट देता है, किसे आराम देगा वह?
'बुराई' को 'भलाई' की नहीं पोशाक पहिनाओ।
बुरा है वह, सभी को है, उसे मत काम में लाओ॥

ल०—(क्रोध से) चन्द शब्दों में जवाब दो, नारायण! तुम किसे पसन्द करते हो?

नारायण—(गम्भीर-दृढ़ स्वर मे) सभी को! मुझे कोई कन्या बुरी नहीं लगती। बुरा लगता है, तो यह नीच-व्यवहार जिसको थामकर, आप मुझे कन्या छाँट लेने को कह रहे हैं।

इधर दशा है ये देवियों की,
कि घूँट तौहीन के पी रहीं हैं।
उधर देखिए तो बड़े घरों में,
हजारों मर-मर के जो रहीं हैं॥
शराब पीकर इधर तो स्वामी,
पड़े हैं वेश्या के प्रेम सर में।
कहार आया नहीं इधर यों—
कि पत्नी प्यासी पड़ी है घर में॥

ल०—(क्रोध से) नारायण! हर वक्त अमीरी की बुराई मैं सुनने के लिए तैयार नहीं।

ये सारे सुख के साधन हैं, बुरा कहता है तू जिनको।
अगर पैसा नहीं होता, सितारे दीखते दिन को॥

भटकता भूख से, दो रोटियों के वास्ते दर-दर।
कि पड़ते काटने जाड़े, सभी दो चार चिथड़ों पर॥

नारायण—(तृप्त-स्वर में) काश ! ऐसा होता ! तो मानिए, पिताजी मुझे रंज नहीं होता। मैं हृदय-हीन अमीरी से ग़रीबी को मूल्यवान मानता हूँ। जो दूसरे के अपमान को अपनी शान समझती है। आज मैं ग़रीब का बेटा होता, तो हरगिज़ इन बेचारी लड़कियों को, तौहीन की भट्टी में न दहकना पड़ता।

हँसे, रोये नहीं मदमस्त हो पागल शराबी हो।
अमीरी हो, ग़रीबी हो, मगर दिल पर न हावी हो॥
ग़रीबी क्यों बुरी है, जो गुनाहों से बचाती है ?
भली कैसे अमीरी है, जो पत्थर दिल बनाती है ?

ल०—(कड़े-स्वर में) फिर बहस ? आख़िर तेरा मन्शा क्या है—उसे कह ? क्या शादी से इन्कार है ?

नारायण—(दृढ़-स्वर में) जी हाँ !

ल०—(आँखें चढ़ाकर) क्यों ? सबब ?

नारायण—(गम्भीर होकर) सबब ? इसलिए कि मैं दूसरी जगह शादी का वचन दे चुका हूँ।

ल०—(अचरज के साथ) कहाँ ? किसकी कन्या है ?

नारायण—(संक्षेप में) यहीं ! त्रिलोचन की कन्या—लक्ष्मी !

ल०—(हैरत में भरकर) लक्ष्मी ? उस दरिद्र भिखारी की कन्या लक्ष्मी, जो उस दिन हमारे दर्वाजे पर भीख माँगने आया था ?...

नारायण—(दृढ़ता के साथ) जी हाँ ! उसी भिखारी की कन्या के साथ मैंने सम्बन्ध तय किया है।

ल०—(रुखाई से) किस लिए ?

नारायण—(दृढ़ता से) इसलिए कि ग़रीबी—अमीरी की

खाई पट जाय। अमीर, ग़रीब को मनुष्य समझ सकें, भाई चारे का बर्ताव करें।

लक्ष्मी—(उपेच्छा से) या इसलिए कि रईस-बाप की आबरू खाक में मिल जाय। मुँह दिखाने के लिए जगह न मिले।

नारायण—(धीरे से) ग़रीब-कन्या की शादी क्या इतना पाप होती है पिताजी !

ल० (झुँझलाकर) पाप ? पाप नहीं, सरासर मौत ! त्रिलोचन के दर्वाजे पर राय बहादुर सेठ लक्ष्मीकान्त की बरात जाय, वे जिन्दा बने रहें ? समधी की हैसियत को लेकर वे उसके गले मिलें ? हरगिज़ यह न होगा, नारायण !

नारायण—(तीखे स्वर में) क्यों क्या इसलिए ही नहीं, कि त्रिलोचन दरिद्र है, वह आपको दहेज नहीं दे सकता। पिताजी ! वह भी मनुष्य ही है, उससे इतनी घृणा न करो। उसे गले लगाने में इज्ज़त कम नहीं होगी, नाम अमर होगा। सुधार होगा।

ल०—(गम्भीरता के साथ) यह समाज-सुधार प्लेट-फार्म पर कहने की चीज़ होती है—बेवकूफ़ ! स्वयं अपने घर से हीं उसे शुरू नहीं किया जाता।

नारायण—(शान्ति से) तो उसका नाम सुधार नहीं, दम्भ या धोखा हो सकता है। सुधार का बीज अपने भीतर ही पनपता है पिताजी !

नहीं कहते हैं वे मुँह से जो कुछ करके दिखाते हैं।
जो कहते हैं उसे जीवन में पहले अपने लाते हैं॥

अपने दूसरे रईस जादे भाइयों के सामने यह आदर्श मुझे रखने दीजिए—पिताजी ! बाधा न डालिए।

ल०—(हाथ पर हाथ मार कर) हरगिज़ नहीं। भिखारी की बेटी से, रायबहादुर सेठ लक्ष्मीकान्त के लड़के की शादी हर्गिज़ नहीं हो सकती। भूल जा इस सपने को !

मिटाना चाहता है आबरू को मुश्किलों से जो बनी !
चला है फोड़ने आँखें तू अपने हाथ से अपनी ॥

नारायण—(नरम स्वर में) लेकिन मैं जो वचन दे चुका हूँ। वचन की भी तो कोई क़ीमत होती है ?

ल०—(उपेक्षा से) वचन की क़ीमत, मतलब के मुक़ाबिले में ज्यादा नहीं होती ? पहले अपना मतलब देखना चाहिए, पीछे वचन !

वचन की क़ैद में रहने की आदत को कुचल डालो।
वचन अपना है, अपना है तो जब चाहे बदल डालो ॥

नारायण—(प्रार्थना के ढंग पर) यह अमीरी का अभिशाप है—पिताजी ! कि आप वचन के मूल्य को महसूस नहीं करते।

वचन के नाम पर लोगों ने कितना दुख उठाया है।
मिटा डाला है तन तक, पर वचन अपना बचाया है ॥
वचन का जो नहीं सच्चा, कि वह विश्वास खोता है।
हज़ारों तरह से उसका यहाँ उपहास होता है ॥

पिताजी ! मैं वचन को शान से, ईमान से और जान से भी क़ीमती मानता हूँ।

वचन जिसका गया उसका गया सब कुछ जमाने से।
अमर बनती है मानवता वचन अपना निभाने से ॥

ल०—(कड़क कर) तो क्या इसका मानी यही है कि तू भिखारिन लक्ष्मी के साथ शादी करेगा ?

नारायण—(दृढ़ कण्ठ से) बिल्कुल ! बिल्कुल यही बात है—पिताजी !

ल०—(क्रोध से पैर पटकते हुए) तो दूर हो मेरे सामने से, नालायक कहीं के ! (धकेलते हुए) भाग यहाँ से, तेरे लिए मेरे घर में जगह नहीं है । एक सिंगल पाई पर तेरा अधिकार नहीं ।

नारायण—(सिर झुका कर) बहुत अच्छा पिताजी । जाता हूँ । घर में मेरे लिए जगह नहीं है, तो रहने दीजिए—खुश किस्मती से दुनिया बहुत बड़ी है !

धन की है कब पर्वाह मुझे, कब कहा कि मैं धनवान बनूँ ।
ख्वाहिश है मेरी एक यही, भीतर से मैं इन्सान बनूँ ॥

लेकिन याद रखिए—पिताजी ! जिस शान की ख़ातिर आप मुझे घर से निकाल रहे हैं, वह शान टिकाऊ नहीं है । पैसे पर यक़ीन और घमण्ड न कीजिए—यह एक का होकर नहीं रहता ।

है आज यहाँ, कल कहाँ रहे, कल कहाँ रहा, यह कौन कहे ?
दरिया का बहता पानी है, मालूम नहीं किस ओर बहे ?
लाखों ही पैसे वाले थे, मिल गये जमीं के पर्दे में—
सोचो तो दुनिया में जीवित कितनों के नाम निशान रहे ?

ल०—(छड़ी मारने को उठाते हुए) नारायण !...... नारायण......!!

नारायण—(नम्र स्वर में) जा रहा हूँ पिताजी ! आपको कष्ट नहीं करना पड़ेगा ! प्रणाम !

[नारायण जाता है । सेठ लक्ष्मीकान्त क्रोध से उसी ओर देखते रहते हैं । फिर आप ही गरजते हुए]

लक्ष्मी—बेवकूफ छोकरा !...

रीझा है महल छोड़ के दुखियों की जेल पर !
है चाह रहा नर्क को, स्वर्गों को ठेल कर !!

— पटाक्षेप —

❀ ड्राप ❀

दूसरा–अङ्क

पहला दृश्य

[स्थान—त्रिलोचन का घर। नारायण और त्रिलोचन का बातें करते हुए प्रवेश। लक्ष्मी बैठी कपड़े सीं रही है। नारायण प्रसन्न है, त्रिलोचन कुछ उदास-सा।]

नारायण—(शान्ति से) रंज करते हो त्रिलोचन? प्रसन्न होना चाहिए कि मैं दहकती-भट्टी से निकल कर, दरिया के ठन्डे-किनारे पर खड़ा हो सका हूँ।

त्रिलो०—(दुखित स्वर में) नहीं नारायण बाबू! ग़रीबी के भीतर भी एक आग है, जो अमीरों के क़यास में भी नहीं आती कि ग़रीब भूखों मरते हैं। सही है, कि यहाँ गुनाहों की गर्मी, और दुराचार की तपिस नहीं है। सीधा-सादा व्यवहार और कपट-हीन प्रेम है। आत्मा संतुष्ट और साफ़ है! लेकिन पेट भूखा है। भूखा पेट दुनिया का उपकार नहीं कर सकता।

नारायण—(गंभीर-स्वर में) क्या कह रहे हो—त्रिलोचन? भरे-पेट कब, किसका भला कर सके हैं?

आकाश ये जिनकी चादर है, धरती ही जिनकी शैय्या है।
उन भूखे-नंगों के ही बल, दुनिया को अन्न मुहैय्या है॥
ये ऊँचे महल-मकान खड़े, हैं ताना जिनने सीना है।
भूखे-नंगों का ही इनके गारे में पड़ा पसीना है॥

ल०—(पास आकर त्रिलो० से) क्या हुआ है पिताजी?

नारायण—(मुग्धता पूर्वक) मुझ से पूछो—लक्ष्मी! सजीव-लक्ष्मी को पाने के लिए निर्जीव-लक्ष्मी को ठोकर मारदी है—मैंने। बस, इतना ही।

ल०—(ताज्जुब से) क्या आप घर से···!

नारायण—(बात काटकर) हाँ, मैं घर से निकाल दिया हूँ। यों ग़रीबों की लिष्ट में एक नाम मेरा भी बढ़ गया है—लक्ष्मी! अब शादी-सम्बन्ध में कोई रुकावट नहीं रही।—'लाइक ही सों कीजिए ब्याह, बैर और प्रीति!'

ल०—(दुलार के स्वर में) लेकिन ग़रीबी में आप दिन कैसे काट सकेंगे? शर्बत पीने वाली जीभ, खारे पानी को कैसे क़बूल करेगी?···

पला है जो दुलारों में, वो ठोकर कैसे खाएगा?
झुके सर जिसके क़दमों में, वो सर कैसे झुकाएगा?

नारायण बाबू! ग़रीबी-अमीरी दो अलग चीजें हैं। दोनों में मौत-जिन्दगी के बराबर फर्क है। उन्हें एक समझने की ग़लती न कीजिए।

नारायण—(गंभीर-स्वर में) भूलती हो लक्ष्मी! जिन्दगी और मौत दो अलग चीजें होने पर भी पास-पास रहती हैं। कोई दोनों से जुदा नहीं रहा। जिसने जिन्दगी का जायका चखा है, मौत का स्वाद भी उसे लेना ही पड़ा है!

मधु-मास जहाँ पर आया है, पतझड़ के दिन भी आएँगे।
रोयेंगे हँसने वाले तब, रोने वाले हर्षाएँगे॥

त्रिलो०—(चिन्तित होकर) गुजर-बसर के लिए क्या उपाय, क्या तर्कीब होगी?—नारायण बाबू!

नारायण—(लापर्वाही से) चिन्ता छोड़ो, त्रिलोचन! जहाँ से मुँह मिला है वहीं से खाने को मिलेगा। चेष्टा करना, मिहनत करना और पुरुषार्थ को सामने रखना अपना कर्तव्य है। मैं इसे याद रखकर साहस के साथ आगे बढ़ूँगा।

अगर हाथों में बल होगा, बँधा सिर से कफ़न होगा।
मिलेगा हर क़दम पर धन, मुक़द्दर में जो धन होगा॥

त्रिलो०—(दीन होकर) ठीक, कह रहे हो नारायण ! भगवान के भरोसे पर ही ग़रीब की जिन्दगी कटती है।

उसी से बल, निर्बलों को मिलता,
वही बे-सहारों का है सहारा।
दुखों में, वही स्वर में आ बैठता है,
इसी से कि है दीन-दुखियों को प्यारा॥

पटाक्षेप

दूसरा दृश्य

[स्थान—एक इंग्रेजी-स्टायल का दफ्तर। मेज़-कुर्सी पड़ी है। मेज पर अखबार-कागज़-पत्र बिखरे हैं; कुर्सी पर हैट धारी सज्जन बैठे काम में मशगूल हैं। एक ओर 'नो वैकैन्सी' का बोर्ड लगा है]

नारायण—(सामने आकर खड़ा हो जाता है) नमस्ते, बाबू साहब !

बाबू—(सिर उठाकर) नमस्ते ! कहिए, क्या चाहते हैं ?

नारायण—(घबराहट के साथ) जी, मैं इसलिए हाज़िर हुआ हूँ कि······मैं फिल्हाल बेकार हूँ। अगर आपके यहाँ सर्विस······!

बाबू—(बात काट कर) आँखों से दीखता है आपको ?

नारायण—(आशा के साथ) ब-ख़ूबी ! यानी बारीक़ से बारीक़ अक्षर मैं दूर से पढ़ सकता हूँ।

बाबू—(तेज़ स्वर में) पढ़े हैं आप ?

नारायण—(सरलता से) हाँ, हाँ ! हिन्दी, इंग्लिस और थोड़ी उर्दू भी लिख पढ़ लेता हूँ।

बाबू—(झुँझलाकर बोर्ड की ओर इशारा करते हुए) और यह बोर्ड ? आपको नहीं दीखता, इस पर लिखा मज़मून आप

नहीं पढ़ सकते ? शर्म आनी चाहिए आपकी आँखों को, आपकी काबिलियत को।

नारायण—(चिढ़कर) दीखता है बोर्ड, पढ़ सकता हूँ उसे लेकिन जरूरत ने मजमून को पोंछ डाला है—बाबू साहब ! जरूरतमन्द की आँखों से आप ही देखने की तकलीफ उठाइए, न ?

बाबू—(क्रोध से) शट्‌अप ! निकल जाइए बाहर !

नारायण—(हँसकर) शुक्रिया ! (जाता है)

तीसरा दृश्य

[स्थान—एक व्यापारी की कोठी। सेठजी गद्दे-तकिये लगाये अध-लेटे पड़े हैं। मुनीमजी बही-खाते खोले हिसाब देख रहे हैं। दीवट पर दिया जल रहा है। नारायण का प्रवेश।]

नारायण—(प्रेम के साथ) राम-राम सेठजी !

सेठ—(स्नेह के साथ) राम-राम भैया। कहो, क्या खरीद होगी ?—बाबू साहब !

नारा०—(अरुचि के स्वर में) खरीद-वरीद नहीं, मैं काम की तलाश में आपके यहाँ आया हूँ—सेठजी ! कुछ काम-वाम बताइये, बेकार हूँ इस वक्त !

सेठ—(अचरज के साथ) काम ? आपके लायक काम मेरे यहाँ नहीं है बाबू साहब। समझे ?

नारा०—मेरे लायक काम कैसा ? मैं तो सब-कुछ काम करने के लिये तैयार हूँ। आपका पानी भर सकता हूँ, लकड़ियाँ फाड़ सकता हूँ, कुलीगिरी कर सकता हूँ। और कहिये, क्या चाहते हैं आप ?

सेठ—(हँसकर) छोड़िये इन बातों को। ये काम कहीं आप के करने के हैं ?

नारा०—(उतावली में) क्यों ?

सेठ—(धीरज से) आप भले मानस मालूम पड़ते हैं। पढ़े-लिखे इल्मदाँ हैं। किसी ऊँचे-घर के नौनिहाल होंगे, और ये काम हैं उन नीच, फटे कपड़े वाले ग़रीबों के जो इन्हीं के लिए पैदा हुए हैं।—समझे ?

नारायण—(गम्भीरता से) मिहनत करना नीचता नहीं है, सेठजी ! नीचता वह है जिसे ऊँच और इज्ज़तदार कहाने वाले अपने रोजमर्रा के कामों में शरीक़ किये बैठे हैं।

जो खोए खुद को बैठे हैं, उन्हें इसका पता क्या है ?
है मानी उच्चता का क्या, असल में नीचता क्या है ?

सेठ—(रुखाई से) मेरे दर्वाजे पर आप नौकरी की ख्वाहिश लेकर आये हैं, बाबू साहब ! इसे भूलकर, आप आगे बढ़ रहे हैं। याद रखिये, मुझे ऐसी बातें बर्दाश्त करने की आदत नहीं है।

नारा०—(दृढ़-स्वर में) आपको सचाई नापसन्द है, तो मुझे चापलूसी की बातों का ढंग याद नहीं है। मैंने जो कुछ कहा है सच कहा है, इज्ज़तदार होने के नाते आपको वह बुरा लगा। लेकिन सेठजी ! बुरे को बुराई सुनने से सबक़ लेना चाहिये, बुरा मानना मुनासिब नहीं है।

अपराध छिपा लेना अपना, बेशक है ओछापन मन का।
यह नीच-कर्म कहलायेगा, अधिकारी नहीं बड़प्पन का॥

सेठ—(क्रोध से, मुनीम क़लम पकड़कर एकटक देखता है) ख़ामोश ! सचाई के नाम पर इज्ज़तदारों की इज्ज़त पर कीचड़ उछालने वाले छोकरे, दूर हो यहाँ से ! नौकरी करने चला है, और मुँह से आग उगलता है। इसीलिए जूतियाँ चटकाता फिर रहा है।

नारायण—(शान्ति से) सच कह रहे हो—सेठजी ! मुँह से आग उगलने के कारण ही इस दशा को पा गया हूँ। नहीं तो आपकी तरह ही मेरी किस्मत में भी अपार वैभव लिखा हुआ है।

लेकिन यह ग़लत है—सेठजी ! कि मैं इज्जतदारों की तौहीन करना चाहता हूँ। सचाई तो यह है कि मैं स्वयं एक इज्जतदार हूँ, और इसलिए ही मैं इज्जतदारों को उन बुराइयों से पाक देखना चाहता हूँ, जो उनको नीचता की ओर ले जा रही है। और उधर एक मुट्ठी दानों के लिये छटपटाने वाले ग़रीब, मैले, फटे, बदबूदार कपड़े पहने रहते भी, भीतर से कितने साफ़ हो रहे हैं ? यह आप नहीं जानते, मैं जानता हूँ।

सेठ—(क्रोध के साथ) झूठ—बिल्कुल झूठ ! जो अपनी इज्जत के बल पर दुनियाँ में चमक रहा है, वह नीच और मुट्ठी-भर अन्न के लिए हाथ फैलाने वाला भिखारी ऊँच हो—बिल्कुल ग़लत है यह !

नारायण—(दृढ़ता के साथ) ग़लत कह रहे हो ? विश्वास नहीं है, तो इधर देखिये—

[उँगली का इशारा करता है—साथ ही पटाखे के साथ आधा पर्दा फटता है। दृश्य—सेठ लक्ष्मीकान्त का मकान। तख़्त पर सेठजी बैठे हैं, सामने बोतलें रक्खी हैं, हाथ में प्याली है। बिजली जल रही है। फ़र्श पर एक सुन्दरी वेश्या नृत्य कर रही है, अश्लील कामोत्तेजक ! सेठजी प्याली पर प्याली ख़त्म कर रहे हैं, मुस्करा रहे हैं, मुग्ध हो रहे हैं। संगीत बिखर रहा है।]

(कुछ देर बाद पर्दा फिर मिल जाता है)

नारायण—(भारी स्वर में) देखा ?

सेठ—(लज्जित-स्वर में) देखा, सच कह रहे हो, पैसे वालों में यह रोग बहुत दिनों से पनप रहा है।

नारा०—(उसी ढंग से) अब इधर देखिए, उसी सन्ध्या की पावन-वेला में पूँजीपतियों के द्वार पर टक्कर खाने वाला गरीब क्या कर रहा है ?—[इशारे के साथ आधा पर्दा फटता है। दृश्य—त्रिलोचन का घर। सामने भगवान का मन्दिर एक छोटी-

सी आलमारी में सजाया हुआ है। मूर्ति नहीं दीखती। लक्ष्मी और त्रिलोचन दोनों दीपक लिए भक्ति के साथ आरती कर रहे हैं। घण्टा झांझ-ध्वनि से घर निनादित हो रहा है। धूप-दान से धुआँ उठ रहा है।]

त्रिलो०-लक्ष्मी—(सम्मिलित)

ॐ जय प्रभु ! कष्ट हरो !
हम हैं कृपा भिखारी, (स्वामीजी) हमें नहीं बिसरो !

विश्व-भ्रमण से थककर, चरण शरण आया।
ज्योतिपुंज के सन्मुख, आत्म-ज्योति लाया॥
दया धर्म उद्धारक ! तुम सुख के दाता।
अखिल विश्व के ईश्वर, घट-घट के ज्ञाता॥

परम शान्ति छविधारी ज्ञान भरो उर में।
सुख-मग मुझे दिखाओ, पहुँचूँ शिवपुर में॥
हम हैं दास तुम्हारे तुम जीवन आशा।
'भगवत्' हमें न भूलो, पूरो अभिलाषा॥
ॐ जय प्रभु कष्ट हरो !

(पर्दा फिर मिलता है)

नारायण—(प्रसन्नता के साथ) देखा ? बतलाइए, किधर नीचता है ? कौन गुम राह हो रहा है ? किसके सुधरने की ज़रूरत है ?

सेठ—(नम्र-स्वर में) ठीक कह रहे हो, बाबू साहब ! सच-मुच आज उपदेश की कद्र नहीं, उदाहरण की इज़्ज़त है। सचाई के लिए भी प्रमाण ज़रूरत है !

नारायण—(गंभीरता के साथ) हाँ, तो कहिए क्या आप मुझे नौकरी दे सकते हैं ?

सेठ—(लज्जित होकर) नौकरी ? फ़िल्हाल तो मजबूर हूँ—

बाबू साहब ! कुछ काम-वाम नहीं चल रहा। हाँ, जरूरत होते ही मैं आपको बुलवाऊँगा, खातिर जमा रखिए !

नारायण—(प्रसन्नतापूर्वक) बहुत-बहुत धन्यवाद ! अच्छा, रामराम। (जाता है)

पटाक्षेप

चौथा दृश्य

[स्थान—ग़रीबों के मुहल्ले का मैदान ! नारायण एक दरख्त के सहारे खड़ा गा रहा है। चित्त शान्त है, आकृति प्रकृतस्थ।]

नारायण— [गायन]

दुनियाँ में ग़रीबों का, भगवान ही मालिक है।

मुट्ठी में नहीं पैसा जीवन में नहीं आशा।
दुनियाँ के लिए गोया वह बन रहा तमाशा॥
यों, वह भी एक हम-तुम जैसा ही नागरिक है।
खाने को नहीं रोटी तन को नहीं है कपड़ा।
सोता हैं वह कहाँ, यह किसको सुनाए दुखड़ा ?
घुलघुल के कोई मरता, लेकर के तपैदिक है।
दिल को सुखा दिया है पैसे के रंज गम ने।
अपने भी नहीं 'अपने' यह देख लिया हमने॥
यह सारा जमाना अब पैसे ही पै आशिक है।
तुम खुद को भले बनकर, दीनों को बुरा कहते।
दर अस्ल बुरे तुम हो, जो मिल के नहीं रहते॥
रहता है मुहब्बत से 'भगवत्' वो मुबारिक है।
दुनियाँ में ग़रीबों का, भगवान ही मालिक है।

नारायण—(स्वगत) सच कहता था, त्रिलोचन, कि ग़रीबी के भीतर भी एक ज्वाला छिपी है। आज ग़रीब बनकर मैंने उसे पाया है।

धधकती आग से भी जो बड़ी सामर्थ्य रखती है।
जो ख़ुद जलती-जलाती है, तड़पती है, बिलखती है।
है उसको देख पाता वह, जो गहरे में उतरता है।
निठुरता को हटा कर जो दया को प्यार करता है!

भगवान! पैसे वालों की आँखों में वह रोशनी डाल दो, कि दूसरे का दुःख, दूसरे की पीड़ा उन्हें दिखलाई दे सके।

बहादो वह महा-धारा धुलें सब मैल अन्तर के।
दया मय वे दिखाई दें बने दिल जिनके पत्थर के॥

(रुक कर) हँय! यह कैसा हाहाकार मच रहा है? कौन निर्दयी अत्याचार की आग दहका रहा है?

[सुनता है। नैपथ्य से—'मर गया!' 'मर गया।' और कोड़े मारने की आवाज़ आती है। फिर—'उतार लो औरतों के हाथों में कड़े।' "वह देखो, कहाँ जा रहा है? ठहर तो!" 'इस वक्त रुपया नहीं है सेठजी!' 'नहीं है? बाँधले चलो इसे!' "झोंपड़ियों में आग लगा दो, क्या देख रहे हो?"]

(स्वगत) ग़रीबों की लाज रखो भगवान!...

बेकार जा रहे हैं क्यों दर्द-भरे नाले?
अब तो बनादे उनकी बिगड़ी बनाने वाले।

पटाक्षेप (तेजी से जाता है)

पाँचवाँ दृश्य

[स्थान—छाया दार मैदान। एक ओर सेठ लक्ष्मीकान्त हाथ में बेत लिए कुर्सी पर बैठे हैं। पास ही कुर्सी पर अमीन साहब बैठे हैं, सामने मेज़ है जिस पर रुपए, नोट, चाँदी के जेवर इकट्ठे हुए रखे हैं। कागज़ बिखरे हुए हैं। चपरासी हाथ में लट्ठ लिए खड़ा है। दूसरा एक तगड़ा-सा नौकर हाथ में कोड़ा लिए हाँप रहा है। कई आदमी औरतें सिसक-सिसक कर रो रही है। कई ज़मीन पर पड़े हैं। जिनके कपड़ों पर ख़ून लगा है।]

ल०—(क्रोध से) नहीं आती ? खींचलो बाहर, पर्दा नशीन, बदजात कहीं की ! शर्मदार है तो रुपए क्यों नहीं लाकर देती। हुःह !

नौकर—(नैपथ्य की ओर जाता है, फिर लौट कर) कहती है कि मेरा आदमी मर गया है, बेवा हूँ !—मुश्किल से बच्चों का पेट भर रही हूँ। चार छः दिन में कुछ रुपए दे दूँगी, इस वक्त एक पाई भी घर में नहीं है—सेठ जी !

ल०—(बेंत उठाकर खड़े होकर) एक पाई नहीं है ? अभी सब रुपए निकले आते हैं ! खींच ला बाहर ! मैं इन मक्कारियों को ख़ूब जानता हूँ। जा, देखता क्या है, चल ! (नौकर एक औरत को नैपथ्य से खींच कर लाता है। वह घूँघट काढ़ कर पड़ी रहती है, रोती-चीखती है।)

औरत०—(हाथ जोड़ते हुए) दया, दया कीजिए सेठजी ! मेरी लाज रखिए। मैं तुम्हारे रुपए······!

ल०—(बात काट कर) बस, निकाल रुपए ! लातों के देव बातों से नहीं मानते—ख़ूब जानता हूँ मैं ! तुम लोगों के साथ यही वर्ताव कामयाब होता है। (मारते हैं)

औरत—(रोकर) बचाओ, बचाओ। मार डाला मुझे !

नारायण—(प्रवेश कर, जोर से) रहम, रहम कीजिए—रक्षक से राक्षस न बनिए। औरत पर हाथ उठाते शर्म खाइए शर्म खाइए ज़रा !

ल०—(नज़र उठा कर देखते हुए) कौन, नारायण ?

नारायण—(शान्ति से) नारायण नहीं, दरिद्र-नारायण !

(लक्ष्मी इसी समय आकर नारायण के पास खड़ी हो जाती है)

ल०—(दृढ़-स्वर में) दरिद्र-नारायण नहीं, लक्ष्मी-नारायण !

लक्ष्मीकान्त—(उपेक्षा से) आँखों के अन्धे और नाम नयन-सुखदास ! दूर हट नारायण ! मेरे काम में रुकावट न डाल !

नारायण—(दीनता पूर्वक) पिताजी ! अन्याय से हाथ खींचिए। अपनी ओर देखिए—आप पैसे वाले है, ग़रीबों पर रहम करना, उन्हें मदद पहुँचाना आपका फ़र्ज़ होना चाहिए।

लक्ष्मीकान्त—पैसे की वसूलयाबी अन्याय नहीं है—नारायण !

नारायण—(क्रोध से) लेकिन पैसा ही ले सकते हैं आप किसी की इज्ज़त, किसी की जान नहीं ले सकते। (एक पड़े हुए व्यक्ति का खून से भींगा कपड़ा उठाकर) यह देखिए—यह खून आपके अत्याचार का ढिंढोरा पीट रहा है। (स्त्री की ओर) इस अभागिनी बेवा की आहें आपके ज़ुल्मों को चिराग़ दिखा रही हैं। (नैपथ्य की ओर) वह जली हुई झोंपड़ी आपकी कोठी पर खिलखिला कर हँस रही है। क्या आपको कुछ नहीं दीखता ? कुछ नहीं सुन पड़ता ?

लक्ष्मीकान्त—(क्रोध से) ख़ामोश ! वही दम-ख़म ! ग़रीबी से भी तुझे सबक़ नहीं मिला। दूर हो यहाँ से।

नारायण—(दृढ़ता पूर्वक) हर्गिज़ नहीं। आप वैभव छीन सकते थे, ग़रीबी नहीं छीन सकते।

लक्ष्मीकान्त—(समझाने के ढँग पर) ज़िद नहीं चलेगी, नारायण ! दूर हो यहाँ से। मेरा काम रुक रहा है। नहीं मुझे सख़्ती से काम लेना पड़ेगा !

नारायण—(जोश के साथ) पर्वाह नहीं।

ल०—(५-७ बैंत मारते हैं। नारायण के मुँह पर खून दीखता है)—तो ठहर ! ले किए की सजा पा !

(नारायण गिर पड़ता है, लक्ष्मी उसे बचाने के लिए उसके ऊपर आजाती है।)

ल०—(दीनता पूर्वक) पिताजी। पिताजी ! पैसे के मुकाबिले में पुत्र की आहें न लीजिये ! उसे न मारिए।

(सहसा पटाखे की आवाज के साथ एक सुन्दरी प्रगट होती है। सिर पर मुकुट है, भड़कदार साड़ी)

ल०—(चौंककर उठते हैं तेजी के साथ) कौन ?

सु०—(दृढ़-स्वर में) लक्ष्मी !

ल०—(अचरज से) कौन, लक्ष्मी ? वही लक्ष्मी जो इस घर की रोशनी को अपने रूप के अंचल में बाँध कर ले गई है ? वही लक्ष्मी, जो बाप-और बेटे के बीच में दीवार की तरह आकर खड़ी होगई थी ? क्या वही भिखारी त्रिलोचन की कन्या लक्ष्मी ?

सु०—(तीखे स्वर में) नहीं! मैं वह लक्ष्मी हूँ, जिसे दुनियावाले धन-दौलत के नाम से पुकारते हैं। चाँदी-सोने के रूप में जिस की पूजा करते हैं।

जमीं से आस्माँ तक गूँजती जिसकी कहानी है।
मैं वह लक्ष्मी हूँ जिसके नाम पर दुनिया दिवानी है॥

ल०—(दबंग स्वर में) किसलिए आई हो यहाँ ? क्या चाहती हो ?

सु०—(क्रोध पूर्ण स्वर में) यह कहने के लिए आई हूँ कि मैं तुझ जैसे अन्यायी, दुष्ट, अत्याचारी, दुराचारी के घर अधिक दिन नहीं ठहर सकती। अगर भलाई चाहता है, तो अपने रवैय्ये को बदल डाल।

रहम से काम ले इन्सानियत जाने न दे मन से।
मिटादे लग रही स्याही जो तेरे पाक़ दामन से॥

ल०—(क्रोध से खड़े होकर) लक्ष्मी ! होश से बातें कर लक्ष्मी ! रायबहादुर दानवीर सेठ लक्ष्मीकान्त के जीते-जी लक्ष्मी की यह हिम्मत नहीं, कि जाने का इरादा भी कर सके।

निकालेगी जुबाँ से गर, जुबाँ तेरी कुचल दूँगा।
नहीं हरगिज रहम से काम, मैं इस काम में लूँगा॥

सु०—(क्रोधपूर्ण) इतनी हिम्मत ? इतना बल ?

ल०—(दृढ़ता पूर्वक) निः सन्देह ! भूल रही है—लक्ष्मी ! कि इन्हीं बाजुओं की ताक़त से मैंने तुझे पकड़ कर क़ैद कर रक्खा है। लोहे की बड़ी-बड़ी तिजोरियों के भीतर बन्द कर रक्खा है। याद रख, तेरा निकल भागना सहज नहीं है।

सु०—(खिलखिला कर हँसते हुए) मुझे बन्द कर रखने वाले मूर्ख ! तू सोचता है—मैंने लक्ष्मी को कैद कर रखा है, सतर्कता से उसकी निगरानी रखता हूँ—वह भाग नहीं सकती। लेकिन यह नहीं जानता कि लक्ष्मी किसी से नाता नहीं रखती। वह दुनिया की सैर करने निकली है—आज यहाँ है, कल वहाँ।

है कौन उसे कब रोक सका, वह चलती फिरती छाया है।
चितवन भी चंचल है उसकी, चंचल ही उसकी काया है॥

ल०—(हठ पूर्वक) ग़लत ! एक समझदार आदमी के पास आने पर वह कभी नहीं भाग सकती। उसे उसके काबू में रहना ही पड़ेगा। लक्ष्मी ! कहे देता हूँ—इस इरादे में तुझे मेरे यहाँ कामयाबी नहीं मिल सकती।

सु०—(अचरज से) भरोसा ? इतना भरोसा, इतना विश्वास ?

ल०—(दृढ़ता पूर्वक) हाँ ! जिन हाथों ने मिहनत कर इकट्ठी की है, वे हाथ हर्गिज तुझे निकलकर नहीं जाने देंगे।

सु०—(उपेक्षा में) लक्ष्मी पर घमण्ड और यक़ीन करने वाले—अन्धे ! तेरी आँखें ही नहीं, आत्मा तक अन्धी हो रही है। तुझे यह दिखाई नहीं देता, कि लक्ष्मी हाथों की ताक़त से नहीं, भाग्य के बल से खिंच कर आती है।

देखा जाता है जहाँ तहाँ, सुनने में भी यह आता है।
लक्ष्मी है जिसकी सेवा में, वह भाग्यवान कहलाता है॥

ल०—(हर्षित होकर) बेशक ! मैं भाग्यवान हूँ। मेरे क़दमों में लक्ष्मी लोटती है।

तीसरा-अङ्क

पहला दृश्य

[स्थान—त्रिलोचन का घर। चारपाई पर सेठ लक्ष्मीकान्त पड़े हुए हैं। डाक्टर उन्हें देख रहा है। त्रिलोचन, नारायण और लक्ष्मी तीनों उदास-मुँह डाक्टर की ओर देख रहे हैं। और देख रहे हैं सेठ जी के बेहोश शरीर की ओर]

डाक्टर—(जाँच करते हुए ही) कितने घन्टे हुए इस बेहोशी को?

नारायण—(जल्दी से) पचास घन्टे से इनका बोल बन्द है—डाक्टर साहब! बिल्कुल ऐसे ही पड़े हैं, करवट तक नहीं लिया।

डाक्टर—(खड़े होकर, गंभीरता से) हूँ! साधारण केस नहीं है नारायण बाबू! यह अच्छा हुआ है कि जल्दी ही आपने खबर ले ली! नहीं बहुत पास था कि……!

नारायण—(बात काटकर) जी, मैंने नहीं त्रिलोचन ने इन्हें अपनी जान होम कर बचाया है—डाक्टर साहब!

त्रिलोचन—(उदासी के साथ) अब क्या आशा है डाक्टर साहब?

डाक्टर—(गंभीर होकर) निश्चय तो कुछ नहीं कहा जा सकता, कि क्या होगा? लेकिन हालत खतरनाक होने के बावजूद भी साठ परसैन्ट कामयाबी की उम्मीद है और, दूसरी बात यह है अगर जिन्दगी मिल भी गई तो—दिमा॰ नहीं मिल सकता। होश आने पर पागल होने का पूरा सन्देह है।

नारायण त्रिलो॰—(एक साथ दोनों) क्या पागल हो जाएँगे?

डाक्टर—(दृढ़ता के साथ) हाँ, दिल और दिमाग़ दोनों पर इनके काफी असर हो चुका है। देखिए, एक इन्जैक्सन

देता हूँ—अभी बेहोशी दूर होगी—और मालूम होगा, क्या बोलते हैं ?

(डाक्टर इन्जैक्सन देता है । त्रिलो० नारायण व्यग्रता से देखते रहते हैं लक्ष्मीकान्त करवट बदलते हैं, फिर कराहते हैं । और पागल की तरह एक दम उठ बैठते हैं । भागना चाहते हैं त्रिलोचन नारायण पकड़ते हैं)

ल०—(ज़ोर से) लक्ष्मी !……लक्ष्मी……लौट इधर ! कहाँ जाती है……? ठहर……तो !

ल०—(पास आकर) पिताजी ! क्या मुझसे कुछ कह रहे हैं ?

ल०—(बिना सुनेही) इन बाजुओं की ताक़त से ही मैंने तुझे पकड़ कर क़ैद किया है । लोहे की बड़ी-बड़ी तिजोरियों में बन्द कर रक्खा है । नहीं, हर्गिज़ तू मेरे घर से नहीं भाग सकती । ठहर तो । (उठते हैं)

नारायण—(पकड़ कर लिटाता है) लेटे रहिए पिताजी ! भागी हुई लक्ष्मी समझदारों के हाथ में भी नहीं आती—आपका तो शरीर ही बेकाबू हो रहा है ।

डाक्टर—(इशारा करते हुए) देखिए, कहा था न ? दर-असल इन्हें कोई बड़ा सदमा पहुँचा है ।

त्रिलो०—(जिज्ञासा से) क्या अब इनका दिमाग़ ठीक नहीं हो सकता ।

डाक्टर—(जल्दी से) ज़रूर हो सकता है, लेकिन इलाज के लिए कुछ ज्यादे पैसे की ज़रूरत होगी, मुमकिन है आप लोग उतने का प्रबन्ध न कर सकें ।

त्रिलो०—(स्वगत) पैसा ! दिमाग़ के लिए पैसा, हृदय के लिए पैसा और पेट के लिए पैसा ! हर चीज़ के लिए पैसे की ज़रूरत है !

इधर गर मौत पैसा है, उधर है जिन्दगी पैसा !
बिना पैसे के दुनिया में, बताओ आदमी कैसा ?

नारायण ! भाग्य को पलटते देर नहीं लगती। ग़रीब से अमीर, अमीर से ग़रीब होना दुनिया में नई बात नहीं है।

(इसी समय नैपथ्य से—'नारायण बाबू क्या यहीं रहते हैं—किवाड़ खोलो।')

त्रिलो०—(लक्ष्मी दवा पिलाकर आती है उससे) देखो तो लक्ष्मी ! दर्वाजे पर नारायण बाबू को कौन पुकार रहा है।

(लक्ष्मी जाती है, और लौटकर)

ल०—(नारायण से) पोष्टमैन आपको बुला रहा है नारायण बाबू शायद आपकी कोई चिट्ठी आई है।

(नारायण जाता है। और खुला हुआ लिफ़ाफ़ा लिए तथा एक पत्र लिए मुस्कराता हुआ आता है।)

नारा०—(हर्षित-स्वर में) यह लो त्रिलोचन ! तुम्हारी भविष्य-वाणी सफल हो रही है। चार सौ की चिन्ता भी इससे मिट जायगी—पढ़ो इसे !

त्रिलो०—(पढ़ते हुए) पचास हज़ार की लॉटरी तुम्हारे नाम आई है नारायण ? धन्य हो, परमेश्वर !

ल०—(हर्षित होकर) पचास हज़ार ?

नारा०—(दृढ़ स्वर में) यह कोई बड़ी लक्ष्मी नहीं है—लक्ष्मी ! तुम बड़ी लक्ष्मी हो, इसलिए बड़ी लक्ष्मी हो, कि दग़ा नहीं करतीं, जीवन-भर साथ देती हो।

हृदय देती हो तुम अपना वचन अपना निभाती हो।
इसी आधार पर दुनियाँ में गृह-लक्ष्मी कहाती हो॥

त्रिलो०—(ख़ुशी में) यह समय पर मेह बरसा है। मृतक के मुँह में अमृत की बूँद गिरी है।

ल०—लॉटरी में लगाने को रुपए कहाँ मिले नारायण बाबू ?

नार०—(मुस्कराते हुए) रुपए ? रुपयों की उस समय मेरे

पास कमी नहीं थी लक्ष्मी ! जब लॉटरी का टिकिट ख़रीदा था, सैकड़ों रुपए एक पैसे की हैसियत रखते थे ।

त्रिलो०—जाओ, अब देर मत करो नारायण ! शीघ्र रुपए लेकर लौटो, और पागल पिता की देख-भाल करो । रुपए देकर उनका दिमाग सही कराओ ।

नारा०—जाता हूँ । (जाता है)

—पटाक्षेप—

तीसरा दृश्य

[स्थान—त्रिलोचन का घर । लक्ष्मीकान्त पलङ्ग पर पड़े हैं डाक्टर देख रहा है । त्रिलोचन और लक्ष्मी दोनों खड़े हैं ।]

डाक्टर—हाँ, क्या पूछा आपने ?

त्रिलो०—यही, अब कैसी दशा है डाक्टर साहब ?

डाक्टर—(मुस्कराते हुए) अब ? अब बहुत फ़र्क है । हालत सुधर रही है, मुमकिन है अगले सप्ताह तक दिमाग़ काफ़ी सहूलियत पर आ जाएगा ।

ल०—लेकिन अब ये बोलते-चालते नहीं, खामोश पड़े रहते हैं । यह कैसी बात है ?

डाक्टर—(सान्त्व-स्वर में) कोई चिन्ता की बात नहीं है । धीरे-धीरे पागलपन जा रहा है । बिल्कुल ठीक हो जायँगे ।

त्रिलो०—(गम्भीर होकर) पागलपन ? क्या सचमुच पागलपन जा रहा है ? क्या मनुष्य का मन और मनुष्य का दिमाग इन्हें मिल सकेगा ?

डाक्टर—क्यों नहीं ! जरूर ! ये अपनी पहली हालत पर आ जायेंगे ।

त्रिलो०—(निराश होकर) पहली हालत पर ? तो कहना पड़ेगा—इलाज से कोई लाभ नहीं हुआ—डाक्टर ! पागल तो यह पहले भी थे, तब दौलत के ग़रूर में पागल थे, और आज

दौलत की जुदाई में पागल हैं ! मैं चाहता हूँ—इनके दिमाग़ से पागलपन दूर हो जाय, ये आदमी बन जाँय।

डाक्टर—(हँस कर) ठीक कहते हो त्रिलोचन ! लेकिन खेद है कि उस पागलपन का इलाज डाक्टरी में नहीं है। मगर मेरा खयाल है कि इस करारी ठोकर की चोट से इन का वह पागलपन भी दूर होकर ही रहेगा। आँखों का पर्दा साबित नहीं रहेगा।

ल०—(लक्ष्मीकान्त से) पिताजी, उठिए पिताजी। डाक्टर साहब खड़े हैं देखिए तो ज़रा।

(लक्ष्मीकान्त टस से मस नहीं होते)

डाक्टर—(जाते हुए) अच्छा, चलता हूँ। (जाते हैं)

(ल०मी दवा उठा कर पिलाती है। इसी समय रुपयों की थैली और नोटों के गट्ठर लिए नारायण का प्रवेश)

नारायण—(आते ही) अब ये दवाएँ बन्द करो—लक्ष्मी ! इनके मर्ज़ की असली दवा यह देखो मेरे पास है।

(पास आकर लक्ष्मीकान्त को नोटों के गट्ठर दिखाते और रुपयों का ढेर लगाते-बजाते हुए) पिताजी ! यह रही आपकी लक्ष्मी···उठिए इसका स्वागत कीजिए।

ल०—(मंत्र मुग्ध की तरह) रुपया···नोट···! (उठाते हैं। नोटों और रुपयों की ओर घूरते रहते हैं।)

त्रिलो०—(लक्ष्मीकान्त को उठते देखकर—स्वगत—) मुर्दों में जान फूँक देने वाली दौलत !···शाबाश···!

तुझे पाने को इज्जत ! आबरू ईमान देता है।
सिफ़त् क्या है कि सारा खल्क तुझ पर जान देता है॥

(प्रगट) देखिए, देखिए नारायण बाबू। दौलत का चमत्कार !

दवाओं के मुक़ाबिल भी करिस्मा यह दिखाती है।
असल में यह दवा है सौ दवाएँ इससे आती हैं॥

नारायण—(हर्ष-पूर्ण) भाग्य सीधा है त्रिलोचन ! समय पर दवा मिली है। उम्मीद है पिताजी का पागल पन दूर हो जाएगा। और विधाता की यह ठोकर उन्हें अक्ल भी देगी !

समझ पाएँगे दुनिया में, अमीरी क्या ग़रीबी क्या ?
किसे कहते हैं खुश हाली बला है बदनसीबी क्या ?

ल०—(उठकर, खड़े होकर, रुपयों के ढेर को देखते हुए) लक्ष्मी ! फिर तू मेरे पास आगई ? ओ होह: ! (प्रसन्न होकर) नारायण ! रुपयों को सँभाल। वह देख, नोट……!

त्रिलो०—(स्वगत) होश ? फिर होश लौट रहा है। फिर चैतन्यता थिरकने लगी ?…ईश्वर ! इन्हें वह आँखें दो, कि अपने कर्तव्य को देख सकें।

न वह तुम आँख दो, जो आँख दुनिया को दिखाती है।
अँधेरी आत्माओं में नहीं जो झाँक पाती है॥
नहीं वह स्वार्थ को ही देखने का काम जो देती।—
वही है आँख, मिलते आँख जो सब की चुराती है।

नारायण—(हर्षित होकर पिता के पैरों पर गिरते हुए) पिताजी ! पिताजी मैं ख़ुशी से भर रहा हूँ, कि तुम अच्छे हो रहे हो (फिर त्रिलोचन के पैरों की ओर नज़र डालते हुए) त्रिलोचन ! मेरे पिता ने तुम्हारे बच्चे की जिन्दगी के लिए भीख नहीं दी। लेकिन तुमने मुझे पिता की भीख देकर कैसे बन्धन में कस लिया है कि मैं मुक्त नहीं हो सकता। तुम्हारे बोझ से दब रहा हूँ।

है सब बोझों से बढ़कर, रूह को अज्ञान का बोझा।
उसी मानिन्द है इन्सान को अहसान का बोझा॥

त्रिलो०—(संकोच पूर्ण) नहीं, नहीं, नारायण ! मुझ से कुछ नहीं हो सका। क्या किया है मैंने ?

.खुद तुमहीं सोचो दिल में कि है मुझ से क्या हुआ ?
इन्सान का ही फर्ज़ है मुझ से अदा हुआ ।
(लक्ष्मीकान्त रुपये खनकाते हैं, नोटों के गट्ठरों को उलटते पलटते हैं । लक्ष्मी देखती रहती हैं ।)

पटाक्षेप

चौथा दृश्य

[स्थान—त्रिलोचन का घर । लक्ष्मीकान्त खड़े हैं ! त्रिलोचन-नारायण और लक्ष्मी तीनों इधर उधर बैठे हैं ।]

ल०—(हर्ष-पूर्ण) धन्य हो आज का दिन !
मिटी है भूख दिल की, दिल में कुछ सन्तोष आया है ।
कि इतनी उम्र के उपरान्त मुझ को होश आया है ॥
समझ पाया हूँ, क्या हूँ, और क्या कर्तव्य मेरा है ।
अँधेरे-मेरे जीवन में गोया उतरा सवेरा है ॥

त्रिलोचन भैय्या ! तुमने मुझे भिखारी बन के भीख दी है। मेरी अन्धी-आँखों में रोशनी डाली है। मुझे मौत के मुँह से बाहर खींचा है । मैं तुम्हारा एहसान नहीं भूलूँगा ।

त्रिलो०—(गंभीर-स्वर में उठकर) एहसान ? ग़रीब, अमीरों पर अहसान नहीं करते, उनकी सेवा करते हैं। उन्हें प्रसन्न करते हैं—सेठजी !

ल०—(गंभीरता से) नहीं, त्रिलोचन ! वह सेवा नहीं कर्तव्य पालन करते हैं। इन्सानियत की शान को बुलन्द करते हैं। आज अमीरी को देकर मैंने मनुष्यता ख़रीदी है ।

नहीं पाया था जो सुख-चैन मैंने .खुश नसीबी में ।
मिला है स्वाद वह मुझको—मुहब्बत का ग़रीबी में ॥

त्रिलो०—(स्वगत) खोल दीं । खोल दीं आँखें—?
दिखाने लग गया इन्सानियत का रास्ता क्या है ?
समझ में आ उठा आखिर, .खुदी क्या है .खुदा क्या है ?

(प्रगट) अहो भाग्य ! आज हम ग़रीबों के अहोभाग्य हैं, कि एक बड़ी हस्ती हमारी जमात में शामिल हुई है।

ल०—(जल्दी से) नहीं, नहीं त्रिलोचन ! मनुष्य-मनुष्य में बड़े छोटे का भेद नहीं होना चाहिए। इसी ग़लती ने मुझे अँधेरे में रखकर बर्बाद किया था।

'बड़ा मैं हूँ' इसी मनहूसियत ने, कर दिया गारत !
ज़हर पीता रहा यह जान कर हूँ पी रहा शरबत !!
इसी ने बाप बेटे की मुहब्बत तक—मरोड़ी है।
दिखाने मुँह नहीं इसने जगह दुनिया में छोड़ी है॥

नारायण—(स्वगत) सौभाग्य ! कि पिताजी के भीतर से वह पाप धुल गया, जो उनकी कीर्ति को काला करने वाला था !

वे अपनी योग्यता से अब, नया-युग, युग में ला देंगे।
दुखी-दीनों की दुनिया को भी फिर से जगमगा देंगे॥

(प्रगट) इस तरह दुखी-मन न कीजिए पिताजी ! खण्डहर हुई कोठी को फिर सँभालिए ! ज्वाला की लपटों ने जितना आपका नष्ट किया है, एवज़ में उससे ज्यादह आप को दे दिया है।

लिया है वह, कि जो पुख़्ता नहीं हर पल में हिलता है।
दिया है वह, कि जो हर एक को मुश्किल से मिलता है।

ल०—(गंभीरता पूर्ण) मगर मैं उतने से सन्तुष्ट नहीं हूँ नारायण ! मैं उस चीज़ को भी चाहता हूँ जिसे मैंने गफ़लत की घड़ी में खो दिया था। (हँसते हुए) क्या वह मुझे नहीं मिलेगी ?

नारा०—(दृढ़ता के साथ) क्यों नहीं मिलेगी !

हृदय बलकर खींचता है, जब हृदय के तार को।
तब बरसता दीखता है, प्रेम सब संसार को॥

पिताजी ! पुत्र का धर्म यह नहीं कहता कि पिता से दूर रहे। लहरों की तरह वे जुदे होकर भी जुदे नहीं हो सकते।

लक्ष्मीकान्त—(हर्ष-भरे स्वर में) नारायण ! मैं बहुत खुश हूँ, कि मेरा पुत्र मेरे घर का सच्ची रोशनी है।

न फ़ख़्र अपने पर है जिसको,
कि जिसका 'आपा' तक लापता है।
नहीं है इन्सानियत उस बशर में,
जो पैर गैरों के चूमता है॥

त्रिलो०—(हर्ष से गद्‌गद् होकर) फिर उस विलास-भवन को आबाद कीजिए—सेठजी !...

लक्ष्मीकान्त—(निश्चय के साथ) नहीं त्रिलोचन ! अब वह विलास-भवन नहीं, सेवा-सदन बनेगा ! अब वहाँ वैभव का प्रदर्शन नहीं, ग़रीबी मिटाने का क्रियात्मक उपाय होगा। ग़रीबों को धक्के नहीं, सहयोग और सहानुभूति मिलेगी। उस जली हुई इमारत की एक-एक ईंट पवित्र हो चुकी है। और निःस्वार्थ, सेवा-व्रती व्यक्तियों का आह्वान कर रही है।

त्रिलो०—(प्रफुल्लित होकर) बड़ी सुन्दर योजना है सेठजी ! देश को आज इसी चीज़ की ज़रूरत है। आज की जनता उपदेश नहीं, उदाहरण चाहती है।

उसे करके दिखा दोगे, जिसे करने को कहते हो।
तो दुनिया कह उठेगी—बात बेशक सत्य कहते हो॥

नारा०—(हर्षित-स्वर में) इस पुनीत निर्माण-कार्य का समारम्भ किसके द्वारा होगा पिताजी ?

लक्ष्मीकान्त—(सन्तोषपूर्ण) उसी के द्वारा जिसके द्वारा इन विचारों को बढ़ने-पनपने का मौका मिला है। उसी के द्वारा जो इस समारम्भ के नीचे नींव की ईंट तरह दबा हुआ है और जिसे सन्मान और नाम की इच्छा नहीं है। जो मेरी दृष्टि में सबसे बड़ा दानी है।

नारा०—(अचरज से) कौन-सा धनकुबेर है वह ? कौन-सा नेता है वह ? साफ़ कहिये पिताजी !

लक्ष्मीकान्त—(त्रिलोचन की ओर) त्रिलोचन ! जिसकी मूक-सेवा ने नेतागिरी को चुनौती दी है। जिसके प्राण-दान ने दानियों के मुँह पर तमाचा मारा है।

बुरा पाकर भी जिसने शत्रु तक का भला सोचा है।
या कहिये यह ग़रीबी ने अमीरी को दबोचा है॥

त्रिलो०—(गम्भीरता से) प्रशंसा का चस्का न लगाइये। यह लालच सेवा का शत्रु और कार्य का विनाश करता है—सेठजी !

प्रशंसा चाहता है वह जो मद में चूर रहता है।
जो सेवा धर्म रखता है, वो इससे दूर रहता है॥

ल०—(नारायण को पकड़ कर) नारायण ! मैं पिता होकर भी तुम्हारे मन को नहीं देख सका। असल में मुझे अपनी दौलत के सिवा कुछ नहीं दीखता था। तुम बढ़ रहे थे मैं खींच रहा था। लेकिन आज मैं पिता की हैसियत से तुम्हें वह सजीव-लक्ष्मी दे रहा हूँ। जो निर्जीव-लक्ष्मी को पैरों से रौंद सकती है। जो दासी बनकर जिन्दगी बिता देती है और दगा नहीं देती। (लक्ष्मी से) लक्ष्मी बेटी ! इधर आओ। (लक्ष्मी बढ़ती है। लक्ष्मीकान्त नारायण के हाथ पर लक्ष्मी का हाथ रखते हैं। नैपथ्य में वाद्यध्वनि आती है।)

त्रिलो०—(ऊपर की ओर) धन्य हो प्रभु !

अन्धकार रजनी मिटी, मिटे सभी दुख शोक।
जगमग जगमग हो उठा, जिससे अन्तर लोक॥

—: पटाक्षेप :—

पाँचवाँ दृश्य

[स्थान—लक्ष्मीकान्त कोठी। सामने बोर्ड टँगा है, लिखा है—'दीन-सेवा-सदन' लक्ष्मीकान्त, नारायण, त्रिलोचन और लक्ष्मी फूलों की मालाओं से लदे खड़े हैं। नीचे कुछ बालक-बालिकाएँ चर्खे चला रही हैं। तकली से सूत काता जा रहा है।

खड़े हुए सभी मिलकर गा रहे हैं। नैपथ्य से वाद्य-ध्वनि। चारों ओर फूल बिखेरे जा रहे हैं।

—: सम्मलित-गायन :—

प्रिय चरखा सभी चलाओ!
भारत की डगमग किस्ती का,
आओ, पार लगाओ। प्रिय०
उद्योगों से नाता जोड़ो!
बेकारी की साँकल तोड़ो!
और गरीबी को स्वदेश से,
मिल कर मार भगाओ। प्रिय०
कच्चे तागे, नन्हे-तारे!
हर देंगे सब कष्ट हमारे।
दूर करेंगे ज्वाला तन की—
मन में इस को लाओ। प्रिय०
तार-तार में प्यार छिपा है!
दीनों का आधार छिपा है।
पेट भरो कपड़े पहनो तुम,
अपनी लाज बचाओ। प्रिय०
चरखे का संगीत मधुर-तर।
होकर निर्भय गूँजे घर-घर॥
'भगवत्' भाग्य सूर्य चमका कर,
अन्धकार विनसाओ। प्रिय०
प्रिय चरखा सभी चलाओ।

(संगीत चलता रहता है।)

❀ ड्राप ❀

—: समाप्त :—